प्रेरणाप्रद कथा - गाथाएँ

- पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

दो शब्द

कहानी और कथा सुनने-पढ़ने की रुचि मनुष्य में स्वभावतः पाई जाती है। जो शिक्षा या उपदेश निबंध के रूप में पढ़ना और हृदयंगम करना कठिन जान पड़ता है वही कथा-कहानी के रूप में रुचिपूर्वक पढ़ लिया जाता है और समझ में भी आ जाता है। कारण यही है कि निबंध या लेख विवेचनात्मक होते हैं, उनका मर्म ग्रहण करने में बुद्धि को विशेष परिश्रम करना पड़ता है। जिन निबंधों की भाषा अधिक प्रौढ़ अथवा गूढ़ होती है उनके समझने में प्रयत्न भी अधिक करना पड़ता है और उसके लायक विद्या, बुद्धि तथा भाषा ज्ञान सब व्यक्तियों के पास होता भी नहीं।

पर कहानी की बात इससे भिन्न है। वर्णनात्मक प्रसंग सुनने का क्रम आरंभिक अवस्था से ही चलने लगता है। छोटे बच्चे भी कहानी सुनने का आग्रह करते हैं और उसे सुनने के लालच से रात में जगते भी रहते हैं। कम पढ़े व्यक्ति भी कहानी-किस्सा की पुस्तक शौक से पढ़ या सुन लेते हैं। कारण यही कि कहानी में जो घटनाएँ कही जाती हैं उनमें से अधिकांश हमको अपने या अन्य परिचित व्यक्तियों के जीवन में घटी हुई सी जान पड़ती हैं। उन्हें समझ लेने में कुछ कठिनाई नहीं होती। साथ ही कहानीकार उनमें जो थोड़ी बहुत विचित्र अथवा कुतूहल की बातें मिला देता है उससे पाठक का मनोरंजन भी हो जाता है।

पर आजकल जो कहानियाँ प्रचलित हैं, उनमें से बहुत सी उपयोगिता की दृष्टि से निरर्थक ही होती हैं। कितने ही लेखकों का उद्देश्य तो केवल मनोरंजन ही होता है और कितने ही तो स्वयं अश्लीलता तथा कामुकता की मनोवृत्ति वाले होने के कारण अपनी

रचनाओं में भी गंदे और दूषित भाव भर देते हैं। इससे उनका पढ़ना और सुनना लाभदायक के स्थान में उलटा हानिकारक सिद्ध होता है।

इस पुस्तक में जो कथा और गाथाएँ दी गई हैं वे इस दृष्टि से बहुत उपयोगी और हर श्रेणी के पाठकों के पढ़ने लायक हैं। विशेष रूप से छोटी आयु के बालकों के लिए तो वे बहुत उत्तम प्रभाव डालने वाली सिद्ध होंगी। ऐसे बालकों के लिए बड़ी कहानियों का पढ़ना या उनकी सब घटनाओं को ध्यान में रखकर तारतम्य मिला लेना सहज नहीं होता। उनसे कुछ मनोरंजन तो हो जाता है पर अंत तक सब बातों को याद रखना और उनका विश्लेषण करके ठीक निष्कर्ष निकाल लेना सब के लिए संभव नहीं होता।

पर इस पुस्तक में जो एक या आधे पन्ने की कथाएँ दी गई हैं, उनमें केवल एक घटना, वह भी अत्यंत संक्षिप्त रूप में कही गई है। उसके समझने या याद रखने में कोई कठिनाई नहीं होती। इनमें से कुछ दृष्टांतात्मक हैं और कुछ घटनात्मक भी हैं। पर सबको रुचिकर बनाने का प्रयत्न किया गया है। प्रथम तो उनको लिखा ही ऐसे ढंग से गया है कि उनका तात्पर्य शीघ्र ही समझ में आ जाता है। फिर अधिकांश में कथा के अंत में उसके उपदेश या शिक्षा को एक-दो वाक्यों में प्रकट भी कर दिया गया है। इस प्रकार ये कथाएँ धर्म, नीति, सदाचार, दया, उदारता आदि श्रेष्ठ मानवीय गुणों की शिक्षा देने के उद्देश्य से ही लिखी गई हैं और हमारा विश्वास है कि ये पाठकों के लिए कल्याणकारी होंगी। आजकल बालकों के लिए जो कहानियाँ प्रचलित हैं उनमें से अधिकांश में किसी सतशिक्षा का अभाव होता है, पर इन कथाओं से बालक ऐसी अमूल्य शिक्षाएँ प्राप्त कर सकेंगे जो सदैव उपयोगी और हितकारी सिद्ध होंगी।

—प्रकाशक

कथा-गाथाओं की सूची

प्रेरणाप्रद कथा-गाथाएँ

मनुष्य की अपूर्णता

ब्रह्माजी की इच्छा हुई "सृष्टि रचें।" उसे क्रियान्वित किया। पहले एक कुत्ता बनाया और उससे उसकी जीवनचर्या की उपलब्धि जानने के लिए पूछा—"संसार में रहने के लिए तुझे कुछ अभाव तो नहीं ?" कुत्ते ने कहा—"भगवन्! मुझे तो सब अभाव ही अभाव दिखाई देते हैं, न वस्त्र, न आहार, न घर और न इनके उत्पादन की क्षमता।" ब्रह्माजी बहुत पछताए। फिर रचना शुरू की—एक बैल बनाया। जब अपना जीवनक्रम पूर्ण करके वह ब्रह्मलोक पहुँचा तो उन्होंने उससे भी यही प्रश्न किया। बैल दुखी होकर बोला—"भगवन्! आपने भी मुझे क्या बनाया, खाने के लिए सूखी घास, हाथ-पाँवों में कोई अंतर नहीं, सींग और लगा दिए। यह भोंडा शरीर लेकर कहाँ जाऊँ।" तब ब्रह्माजी ने एक सर्वांग सुंदर शरीरधारी मनुष्य पैदा किया। उससे भी ब्रह्माजी ने पूछा—"वत्स, तुझे अपने आप में कोई अपूर्णता तो नहीं दिखाई देती ?" थोड़ा ठिठक कर नवनिर्मित मनुष्य ने अनुभव के आधार पर कहा—"भगवन्! मेरे जीवन में कोई ऐसी चीज नहीं बनाई जिसे मैं प्रगति या समृद्धि कहकर संतोष कर सकता।"

ब्रह्माजी गंभीर होकर बोले—"वत्स! तुझे हृदय दिया, आत्मा दी, अपार क्षमता वाला उत्कृष्ट शरीर दिया। अब भी तू अपूर्ण है तो तुझे कोई पूर्ण नहीं कर सकता।"

अनासक्त कर्म ही सच्चा योग

अश्वघोष को वैराग्य हो गया। भोग-विलास से अरुचि और संसार से विरक्ति हो जाने के कारण उसने गृह-परित्याग कर दिया।

ईश्वर-दर्शन की अभिलाषा से वह जहाँ-तहाँ भटका, पर शांति न मिली। कई दिन से अन्न के दर्शन न होने से क्षुधार्त और थके हुए अश्वघोष एक खलिहान के पास पहुँचे। एक किसान शांति व प्रसन्न मुद्रा में अपने काम में लगा था। उसे देखकर अश्वघोष ने पूछा— "मित्र! आपकी प्रसन्नता का रहस्य क्या है?"

'ईश्वर-दर्शन' उसने संक्षिप्त उत्तर दिया। मुझे भी उस परमात्मा के दर्शन कराइए? विनीत भाव से अश्वघोष ने याचना की।

अच्छा कहकर किसान ने थोड़े चावल निकाले। उन्हें पकाया, दो भाग किए, एक स्वयं अपने लिए, दूसरा अश्वघोष के लिए। दोनों ने चावल खाए, खाकर किसान अपने काम में लग गया। कई दिन का थका होने के कारण अश्वघोष सो गया। प्रचंड भूख में भोजन और कई दिन के श्रम के कारण गहरी नींद आ गई। और जब वह सोकर उठा तो उस दिन जैसी शांति, हल्का-फुल्का, उसने पहले कभी अनुभव नहीं किया था। किसान जा चुका था और अब अश्वघोष का क्षणिक वैराग्य भी मिट गया था। उसने अनुभव किया कि अनासक्त कर्म ही ईश्वर-दर्शन का सच्चा मार्ग है।

आत्माभिमुख बनो

माहिष्मती के प्रतापी सम्राट नृपेंद्र का यश पूर्णिमा के चंद्रमा की भाँति सर्वत्र फैल रहा था। राजकोष, सेना, स्वर्ण, सौंदर्य, शक्ति किसी वस्तु का कोई अभाव न था। महाराज नृपेंद्र प्रजावत्सल और न्यायकारी थे। संपूर्ण प्रजा भी उन्हें बहुत श्रद्धा की दृष्टि से देखती थी।

समय बीता। शक्तियाँ घटीं। शरीर टूटा। वृद्धावस्था बढ़ने लगी और उसके साथ ही नृपति के अंतर में उद्वेग और क्षोभ छाने लगा।

उन्होंने बोलना-चालना बंद कर दिया। किसी से मिलते भी नहीं थे। उदास, बेचैन राजा न जाने किस चिंता में डूबे रहते।

एक दिन बड़े सवेरे सम्राट राज उद्यान की ओर निकल गए। एक स्फटिक शिला पर पूर्वाभिमुख अवस्थित नृप अब भी कोई वस्तु खोज रहे थे। धीरे-धीरे प्रातः रवि उदित हुआ। राजसरोवर में उनकी बालकिरणें पड़ीं और सहस्र दल कमल खिलने लगा। धीरे-धीरे कमल पूर्ण रूप से खिल गया और अपना सौरभ सर्वत्र बिखेरने लगा।

आत्मा से आवाज फूटी—क्या तुम अब भी रहस्य नहीं जान पाए कि सूर्य का प्रकाश कहाँ से आता है? प्रकाश उसका अंतर स्फुरण नहीं है क्या? कमल का सौरभ उसके भीतर से ही फूटता है। यह जो सर्वत्र जीवन दिखाई देता है वह सब विश्व-आत्मा के भीतर से ही फूटता है। आनंद का स्रोत तुम्हारे भीतर है उसे तुम्हें ही जगाना पड़ेगा। उसके लिए आत्मोन्मुख बनना पड़ेगा और साधना करनी पड़ेगी।

पंचाग्नि विद्या

वाजिश्रवा ने अपने पुत्र नचिकेता के लिए यज्ञ-फल की कामना से विश्वजित यज्ञ आयोजित किया। इस यज्ञ में वाजिश्रवा ने अपना सारा धन दे डाला। दक्षिणा देने के लिए जब वाजिश्रवा ने गौएँ मँगाई तो नचिकेता ने देखा वे सब वृद्ध और दूध न देने वाली थीं, तो उसने निरहंकार भाव से कहा—"पिताजी निरर्थक दान देने वाले को स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होती।" इस पर वाजिश्रवा क्रुद्ध हो गए और उन्होंने अपने पुत्र नचिकेता को ही यमाचार्य को दान कर दिया।

यम ने कहा—"वत्स! मैं तुम्हें सौंदर्य, यौवन, अक्षय धन और अनेक भोग प्रदान करता हूँ।" किंतु नचिकेता ने कहा—"जो सुख क्षणिक और शरीर को जीर्ण करने वाले हों उन्हें लेकर क्या करूँगा, मुझे आत्मा के दर्शन कराइए। जब तक स्वयं को न जान लूँ वैभव-विलास व्यर्थ है।"

साधना के लिए आवश्यक प्रबल जिज्ञासा, सत्यनिष्ठा और तपश्चर्या का भाव देखकर यम ने नचिकेता को पंचाग्नि विद्या (कुंडलिनी जागरण) सिखाई, जिससे नचिकेता ने अमरत्व की शक्ति पाई।

देवता भी नहीं कर सकते

एक गुरु के दो शिष्य थे। दोनों बड़े ईश्वरभक्त थे। ईश्वर उपासना के बाद वे आश्रम में आए रोगियों की चिकित्सा में गुरु की सहायता किया करते थे।

एक दिन उपासना के समय ही कोई कष्टपीड़ित रोगी आ पहुँचा। गुरु ने पूजा कर रहे शिष्यों को बुला भेजा। शिष्यों ने कहला भेजा— "अभी थोड़ी पूजा बाकी है, पूजा समाप्त होते ही आ जाएँगे।"

गुरुजी ने दुबारा फिर आदमी भेजा। इस बार शिष्य आ गए। पर उन्होंने अकस्मात बुलाए जाने पर अधैर्य व्यक्त किया। गुरु ने कहा— "मैंने तुम्हें इस व्यक्ति की सेवा के लिए बुलाया था, प्रार्थनाएँ तो देवता भी कर सकते हैं, किंतु अकिंचनों की सहायता तो मनुष्य ही कर सकते हैं। सेवा प्रार्थना से अधिक ऊँची है, क्योंकि देवता सेवा नहीं कर सकते।"

शिष्य अपने कृत्य पर बड़े लज्जित हुए और उस दिन से प्रार्थना की अपेक्षा सेवा को अधिक महत्त्व देने लगे।

पंडित और मूर्ख

श्रावस्ती के दो युवकों में बड़ी प्रगाढ़ मैत्री थी, दोनों ही दूसरों की जेब काटने का धंधा करते थे। एक दिन भगवान बुद्ध का एक स्थान पर प्रवचन चल रहा था। अच्छा अवसर जानकर दोनों मित्र वहीं जा पहुँचे। उनमें से एक को भगवान बुद्ध के प्रवचन बहुत अच्छे लगे और वह ध्यानावस्थित होकर उन्हें सुनने लगा।

दूसरे ने कई जेबें इस बीच साफ कर लीं। शाम को दोनों घर लौटे। एक के पास धन था, दूसरे के पास सद्विचार। गिरहकट ने

व्यंग्य करते हुए कहा—"तू बड़ा मूर्ख है रे, जो दूसरों की बातों से प्रभावित हो गया। अब इस पांडित्य का ही भोजन पका और पेट भर।"

अपने पूर्व कृत-कर्मों से दुखी दूसरा गिरहकट तथागत के पास लौटा और उनसे सब हाल कहा। बुद्ध ने समझाया—"वत्स! जो अपनी बुराइयों को मानकर उन्हें निकालने का प्रयत्न करता है वही सच्चा पंडित है, पर जो बुराई करता हुआ भी पंडित बनता है वही मूर्ख है।"

धर्मपत्नी का सहयोग

महाविद्वान कैयट एक ग्रंथ लिख रहे थे। उस महत्त्वपूर्ण कार्य को पूरा करने के लिए समय बहुत कम था अतएव उन्होंने आजीविका का भी ध्यान भुला दिया और उसे लिखने में तल्लीन हो गए।

कैयट की धर्मपत्नी, जब तक वह ग्रंथ पूर्ण न हो गया स्वयं छोटी-मोटी मेहनत-मजूरी करके परिवार को रूखा-सूखा खिलाने का साधन जुटाती रही। पर उसने पति के महत्त्वपूर्ण कार्य में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न न होने दी।

बासा मन ताजा करो

श्रावस्ती का मृगारि श्रेष्ठि करोड़ों मुद्राओं का स्वामी था। वह मन में मुद्राएँ ही गिनता रहता था। उसे धन से ही मोह था। मुद्राएँ ही उसका जीवन थीं। उनमें ही उसके प्राण बसते थे। सोते-जागते मुद्राओं का सम्मोहन ही उसे भुलाए रहता था। संसार में और भी कोई सुख है यह उसने कभी अनुभव ही नहीं किया।

एक दिन वह भोजन के लिए बैठा। पुत्रवधू ने प्रश्न किया—"तात! भोजन तो ठीक है न? कोई त्रुटि तो नहीं रही?" मृगारि कहने लगा—"आयुष्मती! आज यह कैसा प्रश्न पूछ रही हो? तुम जैसी सुयोग्य पुत्रवधू भी कहीं त्रुटि कर सकती है, तुमने तो मुझे सदैव ताजे और स्वादिष्ट व्यंजनों से तृप्त किया है।"

विशाखा ने निःश्वास छोड़ी, दृष्टि नीचे करके कहा—"आर्य! यही तो आपका भ्रम है। मैं आज तक सदैव आपको बासी भोजन खिलाती रही हूँ। मेरी बड़ी इच्छा होती है कि आपको ताजा भोजन कराऊँ पर एषणाओं के सम्मोहन ने आप पर पूर्णाधिकार कर लिया है। खिलाऊँ भी तो आपको उसका सुख न मिलेगा। आपका जीवन बासा हो गया है फिर मैं क्या करूँ।"

मृगारि को सारे जीवन की भूल पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। अब उसने भक्तिभावना स्वीकार की और धन का सम्मोहन त्यागकर धर्म-कर्म में रुचि लेने लगा।

भौतिकता का आकर्षण प्रायः मनुष्य की सदिच्छाओं और भावनाओं को समाप्त कर देता है। उस अवस्था में तुच्छ स्वार्थ के सिवाय जीवन की उत्कृष्टताओं से मनुष्य वंचित रह जाता है।

संयम की शक्ति

महाभारत लिखने के लिए व्यास जी को किसी योग्य व्यक्ति की तलाश हुई। गणेश जी लिखते गए। महाभारत पूरा हुआ तो व्यास जी ने गणेश जी से कहा—"महाभाव! मैंने २४ लाख शब्द बोल कर लिखाए, आश्चर्य है कि इस बीच आप एक शब्द भी न बोले। सर्वथा मौन बने रहे।" गणेश जी ने उत्तर दिया—"बादरायण, बड़े काम संपन्न करने के लिए शक्ति चाहिए और शक्ति का आधार संयम है। संयम ही समस्त सिद्धियों का प्रदाता है। वाणी का संयम न रख सका होता तो आपका ग्रंथ कैसे तैयार होता?"

सच्चा आग्रह

एक व्यक्ति के घर रात को मेहमान आया। उस समय घर में खाने को कुछ न बचा था। उस व्यक्ति ने पड़ोसी का द्वार खटखटाया। लेकिन पड़ोसी ने बिछौने पर पड़े-पड़े ही कहा—"इस आधी रात के समय परेशान न करो, मैं नहीं उठ सकता।" परंतु वह व्यक्ति भी अड़कर

खड़ा हो गया। बोला—"मैं तुम्हें चैन से नहीं सोने दूँगा। मेहमान के लिए रोटी तो देनी होगी।" अंत में उसके आग्रह के सामने पड़ोसी को किवाड़ खोलने ही पड़े। इसी प्रकार सच्चे आग्रह से भगवान का द्वार खटखटाएँ तो वे अवश्य खोलेंगे।

आत्मवत् सर्वभूतेषु

संत केवलराम जी एक गाड़ीवान को उसकी गाड़ी के साथ चलते-चलते श्रीकृष्ण चरित्र कथामृत पान करा रहे थे। अचानक एक स्थान पर बैल रुक गए तो गाड़ीवान ने उनमें दो-तीन सोटे जोर से जमाए। सोटों के डर से बैल जोर से भागने लगे। गाड़ी वाले को अब संत जी का ध्यान आया, उसने मुड़कर देखा तो आप मूर्च्छित होकर गिर पड़े थे। गाड़ीवान ने दौड़कर उन्हें उठाया और उसने देखा कि बैलों को मारे गए सोटों के निशान केवलराम जी के शरीर पर स्पष्ट दिखाई पड़ रहे थे।

वैद्य की आवश्यकता

महात्मा ईसा अपनी दयालुता के कारण सदा दुखी और पापी कहे जाने वाले अपराधियों से हर समय घिरे रहते थे। यहाँ तक कि जब वे भोजन किया करते थे, तब भी बहुत से पतित लोग उन्हें घेरे रहते थे।

एक बार वे बहुत से नीच जाति के और पापी-पतितों के साथ बैठे भोजन कर रहे थे। यह देखकर एक विरोधी ने उनके शिष्य से कहा—"तेरे गुरु, जिसे तुम लोग भगवान का बेटा और पवित्र आत्मा बतलाते हो, इस प्रकार नीचों और पतितों से प्रेम करता है, उनके साथ बैठा भोजन पा रहा है। फिर भला तुम लोग किस प्रकार आशा कर सकते हो कि हम लोग उसका आदर करें और उसकी बात मानें।"

महात्मा ईसा ने विरोधी की बात सुन ली और विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया—"भाई वैद्य की आवश्यकता रोगियों को होती है, निरोगों को नहीं। धर्म की आवश्यकता पापियों को होती है, उनको नहीं जो

पहले से ही अपने को धार्मिक समझते हैं। मैं धर्मात्माओं का नहीं पापियों का हित करना चाहता हूँ। उन्हें मेरी बहुत जरूरत है।''

कृतज्ञता प्रकाश

कुछ ग्रामीण एक साँप को मार रहे थे तभी उधर आ पहुँचे संत एकनाथ बोले—"भाइयो इसे क्यों पीट रहे हो, कर्मवश सर्प होने से क्या ? यह भी आत्मा ही तो है।'' एक युवक ने कहा—"आत्मा है तो फिर काटता क्यों है ?'' एकनाथ ने कहा—"तुम लोग सर्प को न मारो तो वह तुम्हें क्यों काटेगा।'' लोगों ने एकनाथ के कहने से सर्प को छोड़ दिया।

कुछ दिन पीछे एकनाथ अँधेरे में स्नान करने जा रहे थे। तभी उन्हें सामने फन फैलाए खड़ा सर्प दिखाई दिया, उन्होंने उसे बहुत हटाना चाहा पर वह टस से मस न हुआ। एकनाथ मुड़कर दूसरे घाट पर स्नान करने चले गए। उजाला होने पर लौटे तो देखा बरसात के कारण वहाँ एक गहरा खड्ड हो गया है। सर्प ने न बचाया होता तो एकनाथ उसमें कब के समा चुके होते।

सच्चा गीतार्थी

चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथपुरी से दक्षिण की यात्रा पर निकले थे। रास्ते में एक सरोवर के किनारे एक ब्राह्मण को गीता पाठ करते देखा। वह गीता के पाठ में इतना तल्लीन था कि उसे अपने शरीर की सुध नहीं थी, उसका हृदय गद्गद् हो रहा था और नेत्रों से आँसुओं की धारा बह रही थी। पाठ समाप्त होने पर चैतन्य ने पूछा—"तुम श्लोकों का अशुद्ध उच्चारण कर रहे थे, तुम्हें इसका अर्थ कहाँ मालूम होगा ?'' उसने उत्तर दिया—"भगवन्! मैं कहाँ जानूँ संस्कृत। मैं तो जब पढ़ने बैठता हूँ तो ऐसा लगता है कि कुरुक्षेत्र के मैदान में दोनों ओर बड़ी भारी सेना सजी हुई खड़ी है। जहाँ बीच में एक रथ पर भगवान कृष्ण अर्जुन से कुछ कह रहे हैं। उन्हें देखकर रुलाई आ रही है।'' चैतन्य महाप्रभु ने कहा—"भैया तुम्ही ने गीता का सच्चा अर्थ जाना है।'' और उसे अपने गले लगा लिया।

तलाश

एक मनुष्य को संसार से वैराग्य हुआ, उसने कहा—"यह जगत मिथ्या है, माया है, अब मैं इसका परित्याग करके सच्ची शांति की तलाश करूँगा।" आधी रात बीती और वैराग्य लेने वाले ने कहा—"अब वह घड़ी आ गई। मुझे परमात्मा की खोज के लिए निकल पड़ना चाहिए।"

एक बार पार्श्व में लेटी हुई धर्मपत्नी और दुधमुहे बच्चे की ओर सिर उठाकर देखा उसने। बड़ी सौम्य आकृतियाँ थीं दोनों। वैरागी का मन पिघल उठा। उसने कहा—"कौन हो तुम जो मुझे माया में बाँधते हो।" भगवान ने धीमे से कहा—"मैं तुम्हारा भगवान!" लेकिन मनुष्य ने उनकी आवाज नहीं सुनी। उसने फिर कहा—"कौन हैं ये जिनके लिए मैं आत्म-सुख आत्म-शांति खोऊँ?"

एक और धीमी आवाज आई—"बावरे, यही भगवान हैं, इन्हें छोड़कर तू नकली भगवान की खोज में मत भाग।" बच्चा एकाएक चीखकर रो पड़ा। कोई सपना देखा था उसने। माँ ने बच्चे को छाती से लगाकर कहा—"मेरे जीवन आ, मेरी छाती में जो ममत्व है वह तुझे शांति देगा।" बच्चा माँ से लिपटकर सो गया और आदमी अनसुना करके चल दिया। भगवान ने कहा—"कैसा मूर्ख है यह मेरा सेवक, मुझे तजकर मेरी तलाश में भटकने जा रहा है।"

नशा एक बला

मुकदमे के लिए कचहरी में हाजिर होने के लिए दो शराबी घर से निकले। शराब की धुन में बोतल झोले में रख ली पर कागज-पत्र घर में ही भूल गए।

घोड़े पर बैठकर चल पड़े। मध्याह्न भोजन के समय दोनों ने शराब भी पी। नशे में धुत, दोनों एकदूसरे से पूछते तो रहे कि कोई चीज भूल तो नहीं रहे, पर यह दोनों में से किसी को भी याद न रहा कि घोड़े पर चढ़कर आए थे, अब वे पैदल यात्रा कर रहे थे। रात जहाँ

टिके वहाँ फिर शराब पी। थोड़ी देर में चंद्रमा निकला तो एक बोला— "अरे यार! सूरज निकल आया चलो जल्दी करो नहीं तो कचहरी लग जाएगी।" बजाय शहर की ओर चलने के वे गाँव की ओर चल पड़े और सवेरा होते-होते जहाँ से चले वहीं फिर जा पहुँचे। अनुपस्थिति में मुकदमा खारिज हो गया।

परोपकारी को कहीं भी भय नहीं

एक गीदड़ एक दिन गड्ढे में गिर गया। बहुत उछल-कूद की किंतु बाहर न निकल सका। अंत में हताश होकर सोचने लगा कि अब इसी गड्ढे में मेरा अंत हो जाना है। तभी एक बकरी को मिमियाते सुना। तत्काल ही गीदड़ की कुटिलता जाग उठी। वह बकरी से बोला—"बहिन बकरी! यहाँ अंदर खूब हरी-हरी घास और मीठा-मीठा पानी है। आओ, जी भरकर खाओ और पानी पियो।" बकरी उसकी लुभावनी बातों में आकर गड्ढे में कूद गई।

चालाक गीदड़ बकरी की पीठ पर चढ़कर गड्ढे से बाहर कूद गया और हँसकर बोला—"तुम बड़ी बेवकूफ हो, मेरी जगह खुद मरने गड्ढे में आ गई हो।" बकरी बड़े सरल भाव से बोली—"गीदड़ भाई, मैं परोपकार में प्राण दे देना पुण्य समझती हूँ। मेरी उपयोगितावश कोई न कोई मुझे निकाल ही लेगा किंतु तुम निरुपयोगी को कोई न निकालता। परोपकारी को कहीं भी भय नहीं होता है।"

अपरोपकारी का सार निष्फल ही चला जाता है

प्यासा मनुष्य अथाह समुद्र की ओर यह सोचकर दौड़ा कि महासागर से जीभर अपनी प्यास बुझाऊँगा। वह किनारे पहुँचा और अंजलि भरकर जल मुँह में डाला किंतु तत्काल ही बाहर निकाल दिया।

प्यासा असमंजस में पड़कर सोचने लगा कि सरिता सागर से छोटी है किंतु उसका पानी मीठा है। सागर सरिता से बहुत बड़ा है पर उसका पानी खारी है।

कुछ देर बाद उसे समुद्र पार से आती एक आवाज सुनाई दी— "सरिता जो पाती है उसका अधिकांश बाँटती रहती है, किंतु सागर सब कुछ अपने में ही भरे रखता है। दूसरों के काम न आने वाले स्वार्थी का सार यों ही निःसार होकर निष्फल चला जाता है।" आदमी समुद्र के तट से प्यासा लौटने के साथ एक बहुमूल्य ज्ञान भी लेता गया जिसने उसकी आत्मा तक को तृप्त कर दिया।

समदर्शी भगवान के जात नहीं

आखेट की खोज में भटकता विश्वबंधु शवर नील पर्वत की एक गुफा में जा पहुँचा। वहाँ भगवान नील-माधव की मूर्ति के दर्शन पाते ही शवर के हृदय में भक्ति भावना का स्रोत उमड़ पड़ा। वह हिंसा छोड़ कर भगवान नील की रात-दिन पूजा करने लगा।

उन्हीं दिनों मालवराज इंद्रप्रद्युम्न किसी अपरिचित तीर्थ में मंदिर बनवाना चाहते थे। उन्होंने स्थान की खोज के लिए अपने मंत्री विद्यापति को भेजा। विद्यापति ने वापस जाकर राजा को नील पर्वत पर शवर विश्वबंधु द्वारा पूजित भगवान नील-माधव की मूर्ति की सूचना दी। राजा तुरंत मंदिर बनवाने के लिए चल दिया।

विद्यापति राजा इंद्रप्रद्युम्न को उक्त गुफा के पास लाया, किंतु आश्चर्य मूर्ति वहाँ नहीं थी। राजा ने क्रोधित होकर कहा—"विद्यापति तुमने व्यर्थ ही कष्ट दिया है। यहाँ तो मूर्ति नहीं है।"

विद्यापति ने कहा—"महाराज! मैंने अपनी आँखों से इसी गुफा में भगवान नील-माधव की मूर्ति देखी है। अवश्य ही कोई ऐसी बात हुई है जिससे भगवान की मूर्ति अंतर्धान हो गई है। राजन्! आते समय आप क्या भावना करते आए हैं?" राजा इंद्रप्रद्युम्न ने बताया कि मैं केवल इतना ही सोचता आया हूँ कि अपने स्पर्श से भगवान की मूर्ति को अपवित्र करने वाले शवर को सबसे पहले भगा दूँगा और कोई अच्छा पुजारी नियुक्त कर दूँगा और तब मंदिर बनवाने का आयोजन करूँगा। विद्यापति ने बड़ी नम्रता से कहा कि आपकी इसी भेद भावना

के कारण भगवान रुष्ट होकर चले गए हैं। समदर्शी भगवान जात-पात नहीं, हृदय की सच्ची निष्ठा ही देखते हैं।

राजा ने अपनी भूल सुधारी। भगवान से क्षमा माँगी, उनकी स्तुति की। उसी स्थान पर जगन्नाथ जी के प्रसिद्ध मंदिर की स्थापना कराई।

अब तू मेरी सच्ची बेटी है

हजरत मोहम्मद एक दिन फातिमा से मिलने उसके घर गए। वहाँ जाकर देखा उनकी बेटी हाथों में चाँदी के मोटे-मोटे कंगन पहने है और दरवाजों पर रेशमी परदे लहरा रहे हैं। मोहम्मद साहब बिना कुछ बोले उलटे पाँव घर वापस चल दिए और मस्जिद में जाकर रोने लगे।

फातिमा कुछ न समझ सकी। उसने लड़के को दौड़ाया कि देख तो तेरे नाना घर आकर एकाएक क्यों चले गए?

लड़के ने जाकर देखा कि नाना मस्जिद में बैठे रो रहे हैं। उसने घर से एकाएक वापस चले आने और इस प्रकार रोने का कारण पूछा। मुहम्मद साहब ने कहा—"यहाँ गरीब भूख से परेशान होकर मस्जिद के सामने रो रहे हैं और वहाँ मेरी बेटी रेशमी परदों के बीच चाँदी के कड़े पहने मौज कर रही है, यह देखकर मुझे बड़ी शरम आई और मैं मस्जिद में वापस चला आया।"

लड़के ने जाकर अपनी माँ को सारी बातें बतलाईं। फातिमा ने रेशनी परदों में चाँदी के कड़े बाँधकर पिता के पास भिजवा दिए। मोहम्मद साहब ने उन्हें बेचकर गरीबों को रोटी बाँटी और खुशी से जाकर मिले और बोले—"अब तू मेरी सच्ची बेटी है।"

कुछ तो कर यों ही मत मर

रायगढ़ के राजा धीरज के अनेक शत्रु हो गए। एक रात शत्रुओं ने पहरेदारों को मिला लिया और महल में जाकर राजा को दवा सुँघा कर बेहोश कर दिया। उसके बाद उन्होंने राजा के हाथ-पाँव बाँधकर एक पहाड़ की गुफा में ले जाकर बंद कर दिया।

राजा को जब होश आया तो अपनी दशा देखकर घबरा उठा। उस अँधेरी गुफा में उसे कुछ करते-धरते न बना। तभी उसे अपनी माता का बताया हुआ मंत्र याद आ गया—"कुछ कर, कुछ कर, कुछ कर।" राजा की निराशा दूर हो गई और उसने पूरी शक्ति लगाकर हाथ-पैरों की डोरी तोड़ डाली। तभी अँधेरे में उसका पैर साँप पर पड़ गया जिसने उसे काट लिया। राजा फिर घबराया, किंतु फिर तत्काल ही उसे वही मंत्र "कुछ कर, कुछ कर, कुछ कर" याद आ गया। उसने तत्काल कमर से कटार निकाल कर साँप के काटे स्थान को चीर दिया। खून की धार बह उठने से वह फिर घबरा उठा। लेकिन फिर उसी "कुछ कर, कुछ कर, कुछ कर" के मंत्र से प्रेरणा पाकर अपना उत्तरीय फाड़कर घाव पर पट्टी बाँध दी जिससे रक्त बहना बंद हो गया।

इतनी बाधाएँ पार हो जाने के बाद उसे उस अँधेरी गुफा से निकलने की चिंता होने लगी, साथ ही भूख-प्यास भी व्याकुल कर ही रही थी। उसने अँधेरे से निकलने का कोई उपाय न देखा तो पुनः निराश होकर सोचने लगा कि अब तो यहीं पर बंद रहकर भूख-प्यास से तड़प-तड़प कर मरना होगा। वह उदास होकर बैठा ही था कि पुनः उसे माँ का बताया हुआ मंत्र "कुछ कर, कुछ कर, कुछ कर" याद आ गया और द्वार के पास आकर गुफा के मुख पर लगे पत्थर को धक्का देने लगा। बहुत बार प्राणपण से जोर लगाने पर अंततः पत्थर लुढ़क गया और राजा गुफा से निकल कर अपने महल में वापस आ गया।

परमात्मा का पल्ला मत छोड़ो

एक संत निश्चित दिन अपनी गुफा से बाहर निकलते और जिससे उनका स्पर्श हो जाता वही रोगमुक्त हो जाता था। एक भक्त यह सुनकर वहाँ पहुँचा और जिस समय महात्मा गुफा से निकल कर आरोग्यता दान करते हुए गुफा में घुसने को थे तभी भक्त ने उनकी चादर का कोना पकड़ लिया और बोला कि आपने सबका रोग दूर किया, मेरे भी मन का रोग दूर कीजिए।

महात्मा हड़बड़ा कर कहने लगे—"मुझे जल्दी छोड़ो। वह ईश्वर देख रहा है कि तुम उसका पल्ला छोड़कर दूसरे का पल्ला पकड़ना चाहते हो। मुक्तिदाता वही है उसी का पल्ला पकड़।" महात्मा चादर छुड़ाकर गुफा में घुस गए और ईश्वर भक्ति में लीन हो गए।

आत्मविजय

एक था कुत्ता, सड़ गए थे कान जिसके, कई दरवाजों में घूमा, जहाँ भी गया वहाँ दुतकारा गया, वह दिनभर घूमा रोटी के लिए, कौर मिले दो; मार दो; मार और फटकार का कोई ठिकाना नहीं था। इंद्रियों की लिप्सा में दर-दर भटकता हुआ अज्ञानी व्यक्ति भी इसी प्रकार सर्वत्र तिरस्कार पाता है।

एक था हाथी, जंगल में मस्त घूमा करता था, न कोई अभाव था, न दु:ख। एक दिन एक हथिनी की आसक्ति में आ गया। वासना-भूत हाथी को हथिनी उधर ले गई जहाँ शिकारी जाल बिछाए बैठे थे। हाथी पकड़ लिया गया। न रही मस्ती, न रहा वह मुक्त आनंद। वासना में फँसा अज्ञानी मनुष्य भी उसी प्रकार अपने शाश्वत आनंद से भटक कर दु:खों के जाल में जा गिरता है।

एक था कछुआ, कुछ शिकारियों ने उसे दूर से देखा और आक्रमण के लिए दौड़े। कछुआ समझदार था, ज्ञानी था, अंग-प्रत्यंगों को समेट कर खाल के भीतर छिप रहा। शिकारी इधर-उधर ढूँढ़ते ही रहे। कछुए की तरह जो ज्ञानी-जन बाहरी मोह और आकर्षणों से बचकर आत्मा का अनुसरण करते हैं, उसकी सब प्रकार रक्षा होती है।

भगवान का क्या दोष

बेटे ने कहा—"पिताजी! हम भगवान का भजन नहीं करेंगे। भगवान पक्षपाती है, उसने किसी को बहुत धन दिया, किसी को बहुत थोड़ा। ऐसे भेदभाव करने वाले की याद हम क्यों करें?" उस समय

पिता ने कोई उत्तर नहीं दिया। दूसरे दिन पिता ने कहा—"बेटे, आज घर के सामने बाग लगाएँगे।" पिता-पुत्र दोनों उसमें जुट गए, पर बेटा असमंजस में था कि पिता जी ने उत्तर क्यों नहीं दिया।

एक फल नीम का बोया गया दूसरा आम का। दो फुट के फासले पर दोनों पेड़ बढ़ने लगे। पेड़ बड़े हुए, कुछ दिन में फल आए, एक का कड़ुवा दूसरे का मीठा। पिता ने कहा—"बेटा, एक ही धरती के दो बेटों ने एक ही स्थान पर समान सुविधाएँ पाईं पर यह विषमता कहाँ से आ गई।" बेटे ने समझा कि यह प्रकृति-गुण है कि जो जैसा चाहता है अपनी सृष्टि बना लेता है, परमात्मा उसके लिए दोषी नहीं।

निर्भीकता

मूसा किसी गाँव की यात्रा कर रहे थे। एक स्थान पर उन्हें झोंपड़ी में कुछ आवाज सी सुनाई दी। रुककर देखा तो साँप फुफकार रहा था। मूसा भय से काँपने लगा, सांस जोर-जोर से चलने लगी, दम फूलने लगा, बुद्धि ने जवाब दे दिया, अब क्या करना चाहिए।

तभी एक आवाज आई—"मूसा! डरो मत, उठो, साहस करो और साँप को जकड़ कर पकड़ लो।" मूसा ने थोड़ा साहस बाँधा, पाँव आगे बढ़ाया और साँप को पकड़ लिया। जब मूसा ने साँप को पकड़ा तो वह साँप सोने का डंडा बन गया। निष्कर्ष यह है कि भय का साहस से, धैर्य से सामना करना ही सफलता है।

पात्रता की परीक्षा

एक महात्मा के पास तीन मित्र गुरु-दीक्षा लेने गए। तीनों ने बड़े नम्र भाव से प्रणाम करके अपनी जिज्ञासा प्रकट की। महात्मा ने शिष्य बनाने से पूर्व पात्रता की परीक्षा कर लेने के मंतव्य से पूछा—"बताओ कान और आँख में कितना अंतर है?"

एक ने उत्तर दिया—"केवल पाँच अंगुल का, भगवन्!" महात्मा ने उसे एक ओर खड़ा करके दूसरे से उत्तर के लिए कहा। दूसरे ने उत्तर

दिया—"महाराज आँख देखती है और कान सुनते हैं, इसलिए किसी बात की प्रामाणिकता के विषय में आँख का महत्त्व अधिक है।" महात्मा ने उसको भी एक ओर खड़ा करके तीसरे से उत्तर देने के लिए कहा। तीसरे ने निवेदन किया—"भगवन्! कान का महत्त्व आँख से अधिक है। आँख केवल लौकिक एवं दृश्यमान जगत को ही देख पाती है, किंतु कान को पारलौकिक एवं पारमार्थिक विषय का पान करने का सौभाग्य प्राप्त है।" महात्मा ने तीसरे को अपने पास रोक लिया। पहले दोनों को कर्म एवं उपासना का उपदेश देकर अपनी विचारणा शक्ति बढ़ाने के लिए विदा कर दिया। क्योंकि उनके सोचने की सीमा ब्रह्म तत्त्व की परिधि में अभी प्रवेश कर सकने योग्य सूक्ष्म बनी न थी।

शबरी की महत्ता

शबरी यद्यपि जाति की भीलनी थी, किंतु उसके हृदय में भगवान की सच्ची भक्ति भरी हुई थी। बाहर से वह जितनी गंदी दीख पड़ती थी, अंदर से उसका अंत:करण उतना ही पवित्र और स्वच्छ था। वह जो कुछ करती भगवान के नाम पर करती, भगवान के दर्शनों की उसे बड़ी लालसा थी और उसे विश्वास भी था कि एक दिन उसे भगवान के दर्शन अवश्य होंगे। शबरी जहाँ रहती थी उस वन में अनेक ऋषियों के आश्रम थे। उसकी उन ऋषियों की सेवा करने और उनसे भगवान की कथा सुनने की बड़ी इच्छा रहती थी। अनेक ऋषियों ने उसे नीच जाति की होने के कारण कथा सुनाना स्वीकार नहीं किया और श्वान की भाँति दुत्कार दिया। किंतु इससे उसके हृदय में न कोई क्षोभ उत्पन्न हुआ और न निराशा। उसने ऋषियों की सेवा करने की एक युक्ति निकाल ली।

वह प्रतिदिन ऋषियों के आश्रम से सरिता तक का पथ बुहारकर कुश-कंटकों से रहित कर देती और उनके उपयोग के लिए जंगल से लकड़ियाँ काटकर आश्रम के सामने रख देती। शबरी का यह क्रम महीनों चलता रहा, किंतु ऋषि को यह पता न चला कि उनकी यह परोक्ष सेवा करने वाला है कौन? इस गोपनीयता का कारण यह था कि शबरी आधी

रात रहे ही जाकर अपना काम पूरा कर आया करती थी। जब वह कार्यक्रम बहुत समय तक अविरल रूप से चलता रहा तो ऋषियों को अपने परोक्ष सेवक का पता लगाने की अतीव जिज्ञासा हो उठी। निदान उन्होंने एक रात जागकर पता लगा ही लिया कि यह वही भीलनी है जिसे अनेक बार दुत्कार कर द्वार से भगाया जा चुका था।

तपस्वियों ने अंत्यज महिला की सेवा स्वीकार करने में परंपराओं पर आघात होते देखा और उसे उनके धर्म-कर्मों में किसी प्रकार भाग न लेने के लिए धमकाने लगे। मातंग ऋषि से यह न देखा गया। वे शबरी को अपनी कुटी के समीप ठहराने के लिए ले गए। भगवान राम जब वनवास गए तो उन्होंने मातंग ऋषि को सर्वोपरि मानकर उन्हें सबसे पहले छाती से लगाया और शबरी के झूठे बेर प्रेमपूर्वक चख-चखकर खाए।

पक्षियों की रक्षा

कौरवों और पांडवों की सेनाएँ आमने-सामने आ गईं। शंख बजने लगे, घोड़े खुरों से जमीन खूँदने और हाथी चिंघाड़ने लगे। कुरुक्षेत्र के समरांगण में सर्वनाश की तैयारी पूरी हो चुकी थी। ठीक तभी एक टिटहरी का आर्तनाद गूँज उठा।

दोनों शिविरों के मध्य एक छोटी सी टेकरी थी, उसी की खोह में उसका घोंसला था। उसकी आँखें अपने बच्चों की ओर लगी थीं और कान धनुषों की टंकार पर। उसे चिंता स्व-जीवन की नहीं, अपने बच्चों की थी और निस्सहाय पुकार के रूप में आकुल मातृत्व सारे घोंसले में बिखर गया था। कृष्ण के कानों तक यह पुकार पहुँची। असंख्य वीरों की बलि और युद्ध के भयंकर कोलाहल के बीच भी जिनकी बाँसुरी के स्वर कभी विचलित नहीं हुए थे, उन्हीं कृष्ण को इस टिटहरी के स्वर ने झकझोर डाला। वे दौड़े गए। एक पत्थर उठाकर घोंसले के द्वार पर सहेज दिया और वापस आकर अपना स्थान ग्रहण करते हुए सेनापति से कहा—"महावीर भीम, अब तुम युद्ध का बिगुल बजा सकते हो।"

भगवान का प्यार

शाम हुई मनसुख घर लौटे। आज भगवान कृष्ण गौएँ चराने नहीं गए थे। उनका जन्म दिवसोत्सव था। घर में पूजा थी, यशोदा ने उन्हें घर में ही रोक लिया था।

गोप-बालकों ने पूछा—"मनसुख तुम तो अनन्य भक्त और सखा हो गोपाल के, फिर आज कृष्ण ने तुम्हें प्रसाद के लिए नहीं पूछा। तुम तो कहते थे गोपाल मेरे बिना अन्न का ग्रास भी नहीं डालते।"

"हाँ-हाँ ग्वालो! ऐसा ही है, तुम्हें विश्वास कहाँ होगा। कन्हाई तो आज भी मेरे पास आए थे। आज तो उन्होंने मुझे अपने हाथ से ही खिलाया था।"

"यह झूठ है" यह कहकर गोप-बालक कृष्ण को पकड़ लाए और कहने लगे—"लो मनसुख! अब तो कृष्ण सामने खड़े हैं, पूछ ले इन्होंने तो आज देहलीज के बाहर पाँव तक नहीं रखा।"

कृष्ण ने गोप-बालकों का समर्थन किया और कहा—"हाँ-हाँ मनसुख! तुम्हें भ्रम हुआ होगा मैं तो आज बाहर निकला तक नहीं।"

मनसुख ने मुसकराते हुए कहा—"धन्य हो नटवर! तुम्हारी लीलाएँ अगाध हैं, पर क्या आप बता सकते हैं कि यदि आज आप मेरे पास नहीं आए तो आपका यह पीतांबर मेरे पास कहाँ से आ गया। देख लो न अभी भी मिष्टान्न का कुछ अंश इसमें बँधा हुआ है।"

ग्वालों ने पीतांबर खोलकर देखा—वही भोग, वही मिष्टान्न जो पूजा गृह में था, पीतांबर में बँधा था। मनसुख को वह कौन देने गया, किसको पता था?

एक निश्चय—एक अमल

एक लड़के ने एक बहुत धनी आदमी को देखकर धनवान बनने का निश्चय किया। कई दिन तक वह कमाई में लगा रहा और कुछ पैसे

भी कमा लिए। इसी बीच उसकी भेंट एक विद्वान से हुई। अब उसने विद्वान बनने का निश्चय किया और दूसरे ही दिन से कमाई-धमाई छोड़कर पढ़ने में लग गया। अभी अक्षर अभ्यास ही सीख पाया था कि उसकी भेंट एक संगीतज्ञ से हुई। उसे संगीत में अधिक आकर्षण दिखाई दिया, अतः उस दिन से पढ़ाई बंद कर दी और संगीत सीखने लगा।

काफी उम्र बीत गई, न वह धनी हो सका न विद्वान। न संगीत सीख पाया न नेता बन सका। तब उसे बड़ा दुःख हुआ। एक दिन उसकी एक महात्मा से भेंट हुई। उसने अपने दुःख का कारण बताया। महात्मा मुसकरा कर बोले—"बेटा! दुनिया बड़ी चिकनी है। जहाँ जाओगे कोई न कोई आकर्षण दिखाई देगा। एक निश्चय कर लो और फिर जीते-जी उसी पर अमल करते रहो तो तुम्हारी उन्नति अवश्य हो जाएगी। बार-बार रुचि बदलते रहने से कोई भी उन्नति न कर पाओगे।" युवक समझ गया और अपना एक उद्देश्य निश्चित कर उसी का अभ्यास करने लगा।

ऐसी उदारता भी बुरी

गीदड़ ने गड्ढे की ओर देखा—था तो कुछ गहरा, पर मूर्ख जो ठहरा, परिणाम पर विचार किए बिना कूद गया, पानी तो जैसे तैसे पिया, कीचड़ में फँस गया, ऊपर निकलना कठिन हो गया। ऊँचाई इतनी थी कि वह कूदकर ऊपर नहीं आ सकता था।

तभी उधर से एक बकरी निकली। बकरी को देखते ही गीदड़ ने उसे पास बुलाकर कहा—"अरी बहन! तू कितनी प्यासी है, देख कितना शीतल जल है, आ यहाँ उतर आ, तू पानी भी पी लेगी, तेरे सहारे मैं भी ऊपर आ जाऊँगा और फिर मैं ऊपर से तुझे भी चढ़ा लूँगा।"

बकरी को उसकी बातों में स्वार्थ की गंध आ रही थी, पर दयालुतावश वह उसमें उतर गई। गीदड़ तो तैयार था ही, बकरी की पीठ पर बैठा और उछलकर बाहर आ गया। बकरी ने कहा भी भाई अब मुझे भी तो निकालो, पर गीदड़ ने हँसकर कहा—"बहन! तुम्हारे

जैसे मूर्ख दुनिया में न हों तो हमारे जैसों की चालाकी कैसे चले।'' यह कहकर गीदड़ वहाँ से नौ-दो ग्यारह हो गया।

सधन्यवाद वापस

भगवान बुद्ध परिव्राजन करते हुए एक ब्राह्मण के घर ठहरे। जब ब्राह्मण को मालूम हुआ कि वह बुद्ध हैं तो उसने जी भरकर गालियाँ दीं, अपशब्द कहे और तुरंत निकल जाने को कहा।

बुद्ध देर तक सुनते रहे। जब उन सज्जन ने बोलना बंद किया तो उन्होंने पूछा—''द्विजवर! आपके यहाँ कोई अतिथि आते होंगे तो आप उनका सुंदर भोजन और मिष्टान्न से स्वागत करते होंगे।'' इसमें क्या शक—उनने उत्तर दिया। और यदि किसी कारणवश मेहमान उसे स्वीकार न करे तो आप उन पकवानों को फेंक देते होंगे।

''फेंक क्यों देते हैं, हम स्वयं ग्रहण कर लेते''—उन्होंने विश्वासपूर्वक उत्तर दिया।

''तो हम आपकी यह गालियों की भेंट स्वीकार नहीं करते, अपनी वस्तु आप ग्रहण करिए।'' यह कहकर बुद्ध मुसकराते हुए वहाँ से चल पड़े।

निष्ठा की भूख

शौरपुच्छ नामक वणिक ने एक बार भगवान बुद्ध से कहा—''भगवान मेरी सेवा स्वीकार करें। मेरे पास एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ हैं, वह सब आपके काम आएँ।'' बुद्ध कुछ न बोले चुपचाप चले गए।

कुछ दिन बाद वह पुनः तथागत की सेवा में उपस्थित हुआ और कहने लगा—''देव! यह आभूषण और वस्त्र ले लें दुःखियों के काम आएँगे मेरे पास अभी बहुत सा द्रव्य शेष है।'' बुद्ध बिना कुछ कहे वहाँ से उठ गए। शौरपुच्छ बड़ा दुखी था कि वह गुरुदेव को किस तरह प्रसन्न करे!

वैशाली में उस दिन महान धर्म-सम्मेलन था हजारों व्यक्ति आए थे। बड़ी व्यवस्था जुटानी थी। सैकड़ों शिष्य और भिक्षु काम में लगे थे। आज शौरपुच्छ ने किसी से कुछ न पूछा, काम में जुट गया। रात बीत गई, सब लोग चले गए पर शौपुरच्छ बेसुध कार्य-निमग्न रहा। बुद्ध उसके पास पहुँचे और बोले—"शौरपुच्छ, तुमने प्रसाद पाया या नहीं।" शौरपुच्छ का गला रुँध गया। भाव-विभोर होकर उसने तथागत को साष्टांग प्रणाम किया। बुद्ध ने कहा—"वत्स, परमात्मा किसी से धन और संपत्ति नहीं चाहता, वह तो निष्ठा का भूखा है। लोगों को निष्ठाओं में ही वह रमण किया करता है, आज तुमने स्वयं यह जान लिया।"

आत्मीयता-अभिन्नता

भक्तराज जयदेव की धर्मपत्नी का राजभवन में बड़ा सम्मान था। एक बार उन्होंने रानी से कहा—"पति के मरने पर उसकी देह के साथ सती होना निम्न श्रेणी का पतिव्रत धर्म है। सच्ची पतिव्रता तो वे हैं जो पति का मृत्यु संवाद मिलते ही प्राण त्याग देती हैं।"

रानी को शंका हुई। एक दिन राजा के साथ जयदेव भी आखेट स्थल पर गए थे। अवसर पाकर रानी ने कहा—"पंडित जी को वन में एक शेर खा गया।" जयदेव की स्त्री 'श्रीकृष्ण-श्रीकृष्ण' कहती हुई धड़ाम से भूमिगत हो गई। उनके मरने का रानी को बड़ा दु:ख हुआ। बहुत देर तक वे अपने झूठ बोलने पर पछताती रहीं।

राजा के साथ जयदेव लौटे तो उन्हें पूर्ण समाचार दिया गया। जयदेव ने कहा—"रानी माँ से कहो कि वे घबराएँ नहीं, मेरे मृत्यु-संवाद से उनके प्राण गए हैं तो मेरे जीवित लौटने पर लौट भी आएँगे।" भक्त आज अपनी पत्नी की मृत देह के पास हरिकीर्तन में विह्वल हो गए। एक क्षण तक उन्हें अपनी पत्नी की मृत्यु का भी ध्यान न रहा और उनकी पत्नी की देह में चेतना लौट आई।

सत्य को मजबूती से पकड़ो

भगवान बुद्ध जब मरने लगे तब उनने अपने शिष्यों को बुलाकर अंतिम उपदेश दिया—"तुम लोग अपने-अपने ऊपर निर्भर रहो। किसी दूसरे की सहायता की आशा न करो। अपने भीतर से ही अपने लिए प्रकाश उत्पन्न करो। सत्य की ही शरण में जाओ और उसे मजबूत हाथों से पकड़े रहो।"

पश्चाताप

बौद्ध धर्म की नास्तिकवादी विचारधारा का खंडन करने के लिए कुमारिल भट्ट ने प्रतिज्ञा की और उसे पूरा करने के लिए उन्होंने तक्षशिला के विश्वविद्यालय में बौद्ध धर्म का गहन अध्ययन पूरा किया। उन दिनों की प्रथा के अनुसार छात्रों को आजीवन बौद्ध धर्म के प्रति आस्थागत रहने की प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी, तभी उन्हें विद्यालय में प्रवेश मिलता था। कुमारिल ने झूठी प्रतिज्ञा ली और शिक्षा समाप्त होते ही बौद्ध मत का खंडन और वैदिक धर्म का प्रसार आरंभ कर दिया।

अपने प्रयत्न में उन्हें सफलता भी बहुत मिली। शास्त्रार्थ की धूम मचाकर उन्होंने शून्यवाद की निस्सारता सिद्ध करके लड़खड़ाती हुई वैदिक मान्यताएँ फिर मजबूत बनाईं।

कार्य में सफलता मिली पर कुमारिल का अंतःकरण विक्षुब्ध ही रहा। गुरु के सामने की हुई प्रतिज्ञा एवं उन्हें दिलाए हुए विश्वास का घात करने के पाप से उनकी आत्मा हर घड़ी दुखी रहने लगी। अंत में उन्होंने इस पाप का प्रायश्चित करने के लिए अग्नि में जीवित जल जाने का निश्चय किया। इस प्रायश्चित के करुण दृश्य को देखने देश भर के अगणित विद्वान पहुँचे, उन्हीं में आदि शंकराचार्य भी थे। उन्होंने कुमारिल को प्रायश्चित न करने के लिए समझाते हुए कहा—"आपने तो जनहित के लिए वैसा किया था फिर प्रायश्चित क्यों करें ?" इस पर कुमारिल ने कहा—"अच्छा काम भी अच्छे मार्ग से ही किया जाना

चाहिए, कुमार्ग पर चलकर श्रेष्ठ काम करने की परंपरा गलत है। मैंने आपत्ति धर्म के रूप में वह छल किया पर उसकी परंपरा आरंभ नहीं करना चाहता। दूसरे लोग मेरा अनुकरण करते हुए अनैतिक मार्ग पर चलते हुए अच्छे उद्‌देश्य के लिए प्रयत्न करने लगें तो इससे धर्म और सदाचार ही नष्ट होगा और तब प्राप्त हुए लाभ का कोई मूल्य न रह जाएगा। अतएव सदाचार की सर्वोत्कृष्टता प्रतिपादित करने के लिए मेरा प्रायश्चित करना ही उचित है।"

कुमारिल प्रायश्चित की अग्नि में जल गए, उनकी प्रतिपादित आस्था सदा अमर रहेगी।

रुपया रुपए को खींचता है

एक मनुष्य ने कहीं सुना कि रुपया रुपए को खींचता है। उसने इस बात को परखने का निश्चय किया।

सरकारी खजाने में रुपए का ढेर लगा था। वहीं खड़ा होकर वह अपना रुपया दिखाने लगा ताकि ढेर वाले रुपए खिंचकर उसके पास चले आएँ।

बहुत चेष्टाएँ करने पर भी ढेर के रुपए तो न खिंचे वरन असावधानी से उसके हाथ का रुपया छूटकर ढेर में गिर पड़ा।

खजांची का ध्यान इस खटपट की ओर गया तो उस व्यक्ति को संदिग्ध समझकर पकड़वा दिया। पूछताछ हुई तो उसने सारी बात कह सुनाई।

अधिकारी ने हँसते हुए कहा—"जो सिद्धांत तुमने सुना था वह ठीक था, पर इतनी बात तुम्हें और समझनी चाहिए कि ज्यादा चीजें थोड़ी को खींच लेती हैं। ज्यादा रुपए के आकर्षण में तुम्हारा एक रुपया खिंच गया। इस दुनिया में ऐसा ही होता है। बुराई या अच्छाई की शक्तियों में से जो जब भी बढ़ी-चढ़ी होती हैं, तब प्रतिपक्षी विचार के लोग भी बहुमत के प्रवाह में बहने लगते हैं।"

गधों का सत्कार

किसी समय एक जंगल में गधे ही गधे रहते थे। पूरी आजादी से रहते, भरपेट खाते-पीते और मौज करते।

एक लोमड़ी को मजाक सूझा। उसने मुँह लटकाकर गधों से कहा—"मैं चिंता से मरी जा रही हूँ और तुम इस तरह मौज कर रहे हो। पता नहीं कितना बड़ा संकट सिर पर आ पहुँचा है।"

गधों ने कहा—"दीदी, भला क्या हुआ, बात तो बताओ।" लोमड़ी ने कहा—"मैं अपने कानों सुनकर और आँखों देखकर आई हूँ। मछलियों ने एक सेना बना ली है और वे अब तुम्हारे ऊपर चढ़ाई करने ही वाली हैं। उनके सामने तुम्हारा ठहर सकना कैसे संभव होगा?"

गधे असमंजस में पड़ गए। उनने सोचा व्यर्थ जान गँवाने से क्या लाभ। चलो कहीं अन्यत्र चलो। जंगल छोड़कर वे गाँव की ओर चल पड़े।

इस प्रकार घबराए हुए गधों को देखकर गाँव के धोबी ने उनका खूब सत्कार किया। अपने छप्पर में आश्रय दिया और गले में रस्सी डालकर खूँटे में बाँधते हुए कहा—"डरने की जरा भी जरूरत नहीं। मछलियों से मैं भुगत लूँगा। तुम मेरे बाड़े में निर्भयतापूर्वक रहो। केवल मेरा थोड़ा सा बोझ ढोना पड़ा करेगा।"

गधों की घबराहट तो दूर हुई पर उसकी कीमत महँगी चुकानी पड़ी।

नासमझ को समझ दो, वरदान नहीं

एक राजा वन भ्रमण के लिए गया। रास्ता भूल जाने पर भूख-प्यास से पीड़ित वह एक वनवासी की झोंपड़ी पर पहुँचा। वहाँ उसे आतिथ्य मिला तो जान बची।

चलते समय राजा ने उस वनवासी से कहा—"हम इस राज्य के शासक हैं। तुम्हारी सज्जनता से प्रभावित होकर अमुक नगर का चंदन बाग तुम्हें प्रदान करते हैं। उसके द्वारा जीवन आनंदमय बीतेगा।"

वनवासी उस परवाने को लेकर नगर अधिकारी के पास गया और बहुमूल्य चंदन का उपवन उसे प्राप्त हो गया। चंदन का क्या महत्त्व है और उससे किस प्रकार लाभ उठाया जा सकता है, उसकी जानकारी न होने से वनवासी चंदन के वृक्ष काटकर उनका कोयला बनाकर शहर में बेचने लगा। इस प्रकार किसी तरह उसके गुजारे की व्यवस्था चलने लगी।

धीरे-धीरे सभी वृक्ष समाप्त हो गए। एक अंतिम पेड़ बचा। वर्षा होने के कारण कोयला न बन सका तो उसने लकड़ी बेचने का निश्चय किया। लकड़ी का गट्ठा लेकर जब बाजार में पहुँचा तो सुगंध से प्रभावित लोगों ने उसका भारी मूल्य चुकाया। आश्चर्यचकित वनवासी ने इसका कारण पूछा तो लोगों ने कहा—"यह चंदन काष्ठ है। बहुत मूल्यवान है। यदि तुम्हारे पास ऐसी ही और लकड़ी हो तो उसका प्रचुर मूल्य प्राप्त कर सकते हो।"

वनवासी अपनी नासमझी पर पश्चात्ताप करने लगा कि उसने इतना बड़ा बहुमूल्य चंदन वन कौड़ी मोल कोयले बनाकर बेच दिया। पछताते हुए नासमझ को सांत्वना देते हुए एक विचारशील व्यक्ति ने कहा—"मित्र, पछताओ मत, यह सारी दुनिया तुम्हारी ही तरह नासमझ है। जीवन का एक-एक क्षण बहुमूल्य है पर लोग उसे वासना और तृष्णाओं के बदले कौड़ी मोल में गँवाते हैं। तुम्हारे पास जो एक वृक्ष बचा है उसी का सदुपयोग कर लो तो कम नहीं। बहुत गँवाकर भी अंत में यदि कोई मनुष्य सँभल जाता है तो वह भी बुद्धिमान ही माना जाता है।"

पुरुषार्थ की विजय

घर के सामने कई पीढ़ियों से खड़े पर्वत ने चुनौती दी—"है कोई माई का लाल जो मुझे अपने स्थान से हटा दे।" पर्वत की यह गर्वोक्ति किसी ने सुनी, किसी ने नहीं सुनी। किसी ने सुनकर भी अनसुनी कर दी, पर सामने वाले मकान में बैठे हुए एक बूढ़े किसान ने सोचा—

"यदि पहाड़ इस स्थान से हट जाता तो कई बीघे जमीन खेती के लिए निकल आती, बालक-बच्चों का उदर-पोषण होता।"

दाढ़ी पर हाथ फेरा, घर वालों को आवाज लगाई। पिता की आवाज सुनकर सब लड़के और पोते घर से बाहर निकल आए बोले— "बाबा! कहिए क्या आज्ञा है।" वृद्ध ने संकेत करते हुए कहा— "बच्चो, वह देखो पहाड़ दिखाई देता है न, कितनी जमीन घेरे खड़ा है, हम लोग प्रयत्न करें तो उसे अपने स्थान से हटा सकते हैं। एक-दो, चार दिन नहीं जब तक वह हट न जाए चैन नहीं लें तो निश्चित ही पहाड़ को खोदकर समतल भूमि निकाल सकते हैं।"

वृद्ध की उत्साह भरी बातें बच्चों को भा गईं। उनने कहा—"हाँ, हाँ, बाबा हटा क्यों नहीं सकते?" "तो फिर विलंब न करो, चलो अभी जुट जाओ।" वृद्ध ने विजय की कामना करते हुए बच्चों से कहा। फावड़ा-कुदाली लेकर सब जुट गए पर समस्या आ खड़ी हुई इतना बड़ा पहाड़ खोदकर डाला कहाँ जाए। वृद्ध ने बच्चों को निरुत्साहित होते देखा तो फिर दौड़ा-दौड़ा आया और बोला—"थोड़ा चलना ही तो पड़ेगा पर समुद्र में तो हम ऐसे-ऐसे हजारों पहाड़ फेंक सकते हैं।" बच्चे अब दुगने उत्साह से जुट गए और पहाड़ को खोदकर समुद्र में फेंक डाला।

सार्थक श्रद्धा

बाजिश्रवा के शिष्यों धर्मद और विराध में विवाद छिड़ गया। दोनों अपने-अपने को अधिक श्रद्धावान सिद्ध करना चाहते थे।

दोनों गुरु के समीप गए और निर्णय देने का आग्रह किया। गुरु ने कहा—"अपनी-अपनी श्रद्धा की व्याख्या करो तब निर्णय देंगे।"

धर्मद बोला—"देव! आश्रम जीवन में आपकी प्रत्येक बात मानी। उचित, अनुचित का भी ध्यान नहीं किया। आपकी किसी भी आज्ञा को तर्क या विवेक से परखने का प्रयत्न नहीं किया। क्या इससे बढ़कर भी कोई श्रद्धा हो सकती है?"

गुरुदेव मुसकराए, अब उनने विराध को संकेत किया। विराध बोला—"भगवन्! मुझे ज्ञान की प्रबल आकांक्षा है, अतएव आप पर श्रद्धा भी अगाध है, पर साथ ही यह भी परखना आवश्यक समझता हूँ कि जो कुछ कहा या बताया जाता है, वह सत्य से परे तो नहीं है। सत्य का मूल्य अधिक है, इसलिए सत्य को पाने के लिए सर्वस्व छोड़ने के लिए तैयार हूँ।"

गुरु ने कहा—"धर्मद! सत्य को परख कर धारण की जाने वाली श्रद्धा ही श्रेष्ठ है।"

निर्विकल्प समाधि

निर्विकल्प समाधि की साधना में जब सफलता न मिली तो महर्षि उद्दालक ने सोचा—"असफल होकर जीना क्या? निराहार रहकर मृत्यु का वरण करना चाहिए।" उन्होंने अन्न-त्याग कर मरण की साधना आरंभ कर दी।

जिस वट-वृक्ष के नीचे महर्षि का अनशन व्रत चल रहा था उसके कोटर में वीरुध नामक एक बूढ़ा तोता रहता था। उसने ऋषि को संतप्त दृष्टि से देखा और सजल नेत्रों से कहा—"वाचालता क्षमा करें तो एक बात पूछूँ।" उद्दालक ने आँखें खोलीं और तोते से बोले—"कहो क्या कहना है।" वीरुध बोला—"शरीर तो मरणधर्मा है ही, उसकी मृत्यु-योजना करने में क्या पुरुषार्थ हुआ? मृत्यु को अमरता में बदलने के लिए ऐसा ही दृढ़ निश्चय किया जाए और इतना ही त्याग किया जाए तो क्या अमृत की प्राप्ति न होगी?"

उद्दालक देर तक सोचते रहे। शुक की वाणी उनके अंतस्तल तक प्रवेश करती गई। अनशन त्यागकर ऋषि ने अमृत की प्राप्ति के लिए प्रबल पुरुषार्थ आरंभ किया तो निर्विकल्प समाधि भी उनके समीप आ उपस्थित हुई।

पूर्णता का अहंकार

बाप ने बेटे को भी मूर्तिकला ही सिखाई। दोनों हाट में जाते और अपनी-अपनी मूर्तियाँ बेचकर आते। बाप की मूर्ति डेढ़-दो रुपए की बिकती पर बेटे की मूर्तियों का मूल्य आठ-दस आने से अधिक न मिलता।

हाट से लौटने पर बेटे को पास बिठाकर बाप उसकी मूर्तियों में रही हुई त्रुटियों को समझाता और अगले दिन उन्हें सुधारने के लिए समझाता।

यह क्रम वर्षों चलता रहा। लड़का समझदार था, उसने पिता की बातें ध्यान से सुनीं और अपनी कला में सुधार करने का प्रयत्न करता रहा। कुछ समय बाद लड़के की मूर्तियाँ भी डेढ़ रुपए की बिकने लगीं।

बाप अब भी उसी तरह समझाता और मूर्तियों में रहने वाले दोषों की ओर उसका ध्यान खींचता। बेटे ने और भी अधिक ध्यान दिया तो कला भी अधिक निखरी। मूर्तियाँ पाँच-पाँच रुपए की बिकने लगीं।

सुधार के लिए समझाने का क्रम बाप ने तब भी बंद न किया। एक दिन बेटे ने झुँझला कर कहा—"आप तो दोष निकालने की बात बंद ही नहीं करते। मेरी कला अब तो आप से भी अच्छी है, मुझे पाँच रुपए मिलते हैं जबकि आपको दो ही रुपए।"

बाप ने कहा—"पुत्र! जब मैं तुम्हारी उम्र का था तब मुझे अपनी कला की पूर्णता का अहंकार हो गया और फिर सुधार की बात सोचना छोड़ दिया। तब से मेरी प्रगति रुक गई और दो रुपए से अधिक मूल्य की मूर्तियाँ न बना सका। मैं चाहता हूँ वह भूल तुम न करो। अपनी त्रुटियों को समझने और सुधारने का क्रम सदा जारी रखो ताकि बहुमूल्य मूर्तियाँ बनाने वाले श्रेष्ठ कलाकारों की श्रेणी में पहुँच सको।"

तेजस्वी ब्राह्मण

राजा जनक अपनी साज-सज्जा के साथ मिथिलापुरी के राजपथ पर होकर गुजर रहे थे। उनकी सुविधा के लिए सारा रास्ता पथिकों से

शून्य बनाने में राज कर्मचारी लगे हुए थे। राजा की शोभायात्रा निकल जाने तक यात्रियों को अपने आवश्यक काम छोड़कर जहाँ-तहाँ रुका रहना पड़ रहा था।

अष्टावक्र को हटाया गया तो उनने हटने से इनकार कर दिया और कहा—"प्रजाजनों के आवश्यक कार्यों को रोककर अपनी सुविधा का प्रबंध करना राजा के लिए उचित नहीं। राजा अनीति करे तो ब्राह्मण का कर्त्तव्य है कि उसे रोके और समझावे। सो आप राज्याधिकारी गण राजा तक मेरा संदेश पहुँचावें और कहें कि अष्टावक्र ने अनुपयुक्त आदेश मानने से इनकार कर दिया है। वे हटेंगे नहीं और राजपथ पर ही चलेंगे।"

राज्याधिकारी कुपित हुए और अष्टावक्र को बंदी बनाकर राजा के पास ले पहुँचे। जनक ने सारा किस्सा सुना तो वे बहुत प्रभावित हुए और कहा—"इतने तेजस्वी ब्राह्मण जहाँ मौजूद हैं जो राजा तक को ताड़ना कर सकें, वह देश धन्य है। नीति और न्याय के पक्ष में आवाज उठाने वाले सत्पुरुषों के द्वारा ही जन-मानस की उत्कृष्टता स्थिर रह सकती है। ऐसे निर्भीक ब्राह्मण राष्ट्र की सच्ची संपत्ति हैं। उन्हें दंड नहीं सम्मान दिया जाना चाहिए।"

राजा जनक ने अष्टावक्र से क्षमा माँगी और कहा—"मूर्खतापूर्ण आज्ञा चाहे राजा की ही क्यों न हो तिरस्कार के योग्य है। आपकी निर्भीकता ने हमें अपनी गलती समझने और सुधारने का अवसर दिया। आज से आप राजगुरु रहेंगे और इसी निर्भीकता से सदा न्याय पक्ष का समर्थन करते रहने की कृपा करेंगे।"

अष्टावक्र ने वह प्रार्थना जनहित की दृष्टि से स्वीकार कर ली।

अन्नपूर्णा रोटियाँ

ईसा अपने शिष्यों के साथ धर्म प्रचार के लिए जा रहे थे। रास्ते में रेगिस्तान पड़ा, दूर तक कोई गाँव दिखाई न देता था। भोजन की

समस्या उत्पन्न हुई तो ईसा ने कहा—"जो कुछ तुम्हारे पास है उसे इकट्ठा कर लो और मिल-बाँटकर खाओ।"

शिष्यों के पास कुल मिलाकर पाँच रोटी और दो टुकड़े तरकारी निकली। गुरु ने उसे इकट्ठा किया और मंत्र बल से अन्नपूर्णा बना दिया। शिष्यों ने उसे भरपेट खाया और जो भूखे भिखारी उधर से निकले वे भी उसी से तृप्त हो गए।

सोलोमन नामक शिष्य ने पूछा—"गुरुवर! इतनी कम सामग्री में इतने लोगों की तृप्ति का रहस्य क्या है?"

ईसा ने कहा—"हे शिष्यो! धर्मात्मा वह है जो खुद की नहीं सबकी बात सोचता है। अपनी बचत सबके काम आए, इस विचार से ही तुम्हारी पाँच रोटी अक्षय अन्नपूर्णा बन गईं। जो जोड़ते हैं वे ही भूखे रहेंगे। जिनने देना सीख लिया है उनके लिए तृप्ति के साधन आप ही आ जुटते हैं।"

भीष्म की पितृभक्ति

राजा शांतनु एक रूपवती निषाद कन्या सत्यवती से विवाह करना चाहते थे। उनने निषाद के आने पर प्रस्ताव रखा तो उसने उत्तर दिया कि यदि मेरी कन्या के गर्भ से उत्पन्न बालक को ही आप राज आदि देने का वचन दें तो मैं यह प्रस्ताव स्वीकार कर सकता हूँ। शांतनु असमंजस में पड़े, क्योंकि उनकी पहली रानी गंगा का पुत्र भीष्म मौजूद था और वही राज्याधिकारी भी था। शांतनु लौट आए पर वे मन ही मन दुखी रहने लगे।

भीष्म को जब यह पता चला तो उनने पिता को संतुष्ट करना अपना कर्त्तव्य समझा और निषाद के सामने जाकर प्रतिज्ञा की कि मैं अपना राज्याधिकार छोड़ता हूँ। सत्यवती का पुत्र ही राज्याधिकारी होगा। इतना ही नहीं मैं आजीवन अविवाहित ही रहूँगा ताकि मेरी संतान कहीं उस गद्दी पर अपना अधिकार न जमाने लगे। इस प्रतिज्ञा

से निषाद संतुष्ट हुआ और उसने अपनी कन्या का विवाह शांतनु के साथ कर दिया।

पिता के दोष को न देखकर उनकी प्रसन्नता के लिए स्वयं बड़ा त्याग करना भीष्म की आदर्श पितृभक्ति है।

पढ़ने के साथ गुनो भी

एक दुकानदार व्यवहारशास्त्र की पुस्तक पढ़ रहा था। उसी समय एक सीधे-साधे व्यक्ति ने आकर कुतूहलवश पूछा—"क्या पढ़ रहे हो भाई?" इस पर दुकानदार ने झुँझलाते हुए कहा—"तुम जैसे मूर्ख इस ग्रंथ को क्या समझ सकते हैं।" उस व्यक्ति ने हँसकर कहा—"मैं समझ गया, तुम ज्योतिष का कोई ग्रंथ पढ़ रहे हो, तभी तो समझ गए कि मैं मूर्ख हूँ।" दुकानदार ने कहा—"ज्योतिष नहीं, व्यवहार-शास्त्र की पुस्तक है।" उसने चुटकी ली—"तभी तो तुम्हारा व्यवहार इतना सुंदर है।" दूसरों को अपमानित करने वालों को स्वयं अपमानित होना पड़ता है। पढ़ने का लाभ तभी है जब उसे व्यवहार में लाया जाए।

ईमानदार गरीब

सीलोन में एक जड़ी-बूटी बेचकर गुजारा करने वाला व्यक्ति रहता था। नाम था उसका महता शैसा। उसके घर की आर्थिक स्थिति बहुत ही खराब थी, कई कई दिन भूखा रहना पड़ता। उनकी माता चक्की पीसने की मजदूरी करती, बहिन फूल बेचती तब कहीं गुजारा हो पाता। ऐसी गरीबी में भी उनकी नीयत सावधान थी।

महता एक दिन एक बगीचे में जड़ी-बूटी खोद रहे थे कि उन्हें कई घड़े भरी हुई अशर्फियाँ गड़ी हुई दिखाई दीं। उनके मन में दूसरे की चीज पर जरा भी लालच न आया और मिट्टी से ज्यों का त्यों ढक कर बगीचे के मालिक के पास पहुँचे और उसे अशर्फियाँ गड़े होने की सूचना दी।

बगीचे के मालिक लरोटा की आर्थिक स्थिति भी बहुत खराब हो चली थी। कर्जदार उसे तंग किया करते थे। इतना धन पाकर उसकी खुशी का ठिकाना न रहा। सूचना देने वाले शैसा को उसने चार सौ अशर्फियाँ पुरस्कार में देनी चाही पर उसने उन्हें लेने से इनकार कर दिया और कहा—"इसमें पुरस्कार लेने जैसी कोई बात नहीं, मैंने तो अपना कर्त्तव्य मात्र पूरा किया है।"

बहुत दिन बाद लरोटा ने अपनी बहिन की शादी शैसा से कर दी और दहेज में कुछ धन देना चाहा। शैसा ने वह भी न लिया और अपने हाथ-पैर की मजदूरी करके दिन गुजारे।

माँ की सेवाएँ वेदज्ञान

आचार्य महीधर आत्मज्ञान की इच्छा से घर छोड़कर विरक्त हो गए। उनकी माँ घर में कष्ट उठा रही है उन्हें इसका भी ध्यान न रहा। बहुत दिन तप साधना करने पर भी उन्हें पूर्णता प्राप्त न हुई तब वे घर लौट आए। बेटे को पाकर माँ के हर्ष का ठिकाना न रहा। उन्होंने कहा—"बेटा! तूने दुखी का दुःख पहचान लिया तुझे पूर्णता प्राप्त होगी।" माँ के आशीर्वाद का ही फल था कि महीधर को वेदज्ञान प्राप्त हुआ। उन्होंने चारों वेदों का भाष्य करने का गौरव प्राप्त किया।

मैं-मैं ले डूबा

शिष्य अपने गुरु के दर्शन के लिए घर से चल पड़ा। रास्ते में नदी पड़ी। उसे अपने गुरु पर अपार श्रद्धा थी। नदी उसके मार्ग में बाधक बनना चाहती थी। पर जब वह नदी के किनारे पहुँचा तो अपने गुरु का नाम लेते हुए पानी पर कदम रखकर उस पार पहुँच गया।

नदी के दूसरे किनारे पर ही तो गुरु की कुटिया थी। गुरु ने अपने शिष्य को बहुत दिनों बाद देखा तो उनकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। शिष्य चरण स्पर्श के लिए नीचे झुका ही था कि उन्होंने बीच से ही उठाकर गले से लगा लिया। क्षणभर में ही उनका ध्यान भंग हुआ। उन्होंने

सोचा—"मेरे नाम में यदि इतनी शक्ति है तो मैं बहुत ही महान और शक्तिशाली हूँ।" और अगले दिन नाव का सहारा न ले नदी पार करने के लिए 'मैं, मैं, मैं' कहकर जैसे ही वह कदम बढ़ाया कि पाँव रखते ही वह नदी में डूबने लगे और देखते ही देखते उनका प्राणांत हो गया।

अपने लिए कम

"बेटा ले ये दो टुकड़े मिठाई के हैं। इनमें से यह छोटा टुकड़ा अपने साथी को दे देना।"

"अच्छा माँ" और वह बालक दोनों टुकड़े लेकर बाहर आ गया अपने साथी के पास। साथी को मिठाई का बड़ा टुकड़ा देकर छोटा स्वयं खाने लगा। माँ यह सब जंगले में से देख रही थी, उसने आवाज देकर बालक को बुलाया।

"क्यों रे! मैंने तुझसे बड़ा टुकड़ा खुद खाने और छोटा उस बच्चे को देने के लिए कहा था, किंतु तूने छोटा स्वयं खाकर बड़ा उसे क्यों दिया?"

वह बालक सहज बोली में बोला—"माताजी! दूसरों को अधिक देने और अपने लिए कम से कम लेने में मुझे अधिक आनंद आता है।"

माताजी गंभीर हो गईं। वह बहुत देर विचार करती रहीं बालक की इन उदार भावनाओं के संबंध में। उसे लगा सचमुच यही मानवीय आदर्श है और इसी में विश्व शांति की सारी संभावनाएँ निर्भर हैं। मनुष्य अपने लिए कम चाहे और दूसरों को अधिक देने का प्रयत्न करे तो समस्त संघर्षों की समाप्ति और स्नेह-सौजन्य की स्वर्गीय परिस्थितियाँ सहज ही उत्पन्न हो सकती हैं।

आत्मज्ञान आवश्यक

मनुष्य को एक पंख उग आया—विज्ञान का पंख। उसने जोर लगाया और आकाश में उड़ गया। पर अब वह मुक्त और शांत नहीं था। उसे चारों ओर से जटिलता की आँधियों ने सताना प्रारंभ कर दिया।

मनुष्य बहुत घबराया। प्रार्थना की—"हे प्रभो! कैसे संकट में डाल दिया? इससे तो अच्छा था, हमें जन्म ही न देते!"

आकाश को चीरती हुई काल-पुरुष की आवाज आई—"वत्स, आत्मज्ञान का एक और पंखा उगा। भीतर वाली चेतना का भी विकास कर, वही संतुलन पैदा कर सकेगी।"

दया यज्ञ

एक गृहस्थ ने तीन यज्ञ किए, जिनमें उसका सब धन खरच हो गया। गरीबी से छूटने के लिए विद्वान ने बताया कि तुम अपना यज्ञों का पुण्य अमुक सेठ को बेच दो, वह तुम्हें धन दे देंगे।

वह व्यक्ति पुण्य बेचने चल दिया। रास्ते में एक जगह भोजन करने बैठा, तो एक भूखी कुतिया वहाँ बैठी मिली, जो बीमार भी थी, चल-फिर भी नहीं सकती थी। उसकी दशा देखकर गृहस्थ को दया आई और उसने अपनी रोटी कुतिया को खिला दी और खुद भूखा ही आगे चल दिया।

धर्मराज के यहाँ पहुँचा तो उनने कहा—"तुम्हारे चार यज्ञ जमा हैं। किसका पुण्य बेचना चाहते हो?" गृहस्थ ने कहा—"मैंने तो तीन ही यज्ञ किए थे, यह चौथा यज्ञ कैसा?" धर्मराज ने कहा—"यह दया यज्ञ है। इसका पुण्य उन तीनों से बढ़कर है।"

कंजूसी किस काम की?

एक महात्मा ने किसी भक्त की सेवा भावना से प्रसन्न होकर उसे सात दिन के लिए पारसमणि देकर कहा—"इसे छूने से लोहा सोना हो जाता है। जितने सोने की जरूरत हो, बना लो। सात दिन बाद वह वापस ले ली जाएगी।"

भक्त बड़ा प्रसन्न हुआ कि अब मेरा सारा दरिद्र दूर हो जाएगा। पर वह था बड़ा कंजूस। सस्ता लोहा बड़ी तादात में ढूँढ़ने लगा। जिस दुकान पर वह गया वहाँ उसकी समझ में लोहा थोड़ा था और मँहगा भी

था बहुत, सस्ता और बहुत बड़ा ढेर ढूँढ़ने के लालच में वह कई नगरों में गया पर उसे कहीं संतोष न हुआ।

इसी भाग-दौड़ में सात दिन पूरे हो गए। मणि वापस ले ली गई और वह रत्तीभर भी सोना प्राप्त न कर सका।

अधिक सयाने बनने वाले और अधिक कंजूस सदा घाटे में रहते हैं।

मेरा भाई-बंधु और कोई नहीं

एक बार महात्मा ईसा बहुत से जिज्ञासुओं से घिरे हुए उन्हें उपदेश कर रहे थे। तभी किसी ने आकर उनसे कहा—"तुम्हारे भाई और माता वहाँ बाहर खड़े तुम से बात करना चाहते हैं। तुम जाकर उनसे मिल लो।"

महात्मा ईसा बड़े साधारण भाव से यह उत्तर देकर अपने उपदेश कार्य में लग गए—"संसार में मेरा भाई और मेरी माता अन्य कोई नहीं, यही जिज्ञासु जनता ही मेरे भाई और मेरी माता हैं क्योंकि जो मेरे स्वर्गीय पिता के आदेश पर चले वही मेरा भाई, बहन व माता-पिता है। मैं परमात्मा के आदेशों का पालन करने वाले को ही बंधु-बांधव मानता हूँ।"

सज्जन की खोज

बादशाह को एक कर्मचारी नौकर की आवश्यकता थी। तीन उम्मीदवार उनके सामने पेश किए गए।

बादशाह ने पूछा—"यदि मेरी और तुम्हारी दाढ़ी में साथ-साथ आग लगे तो पहले किसकी बुझाओगे?"

एक ने कहा, पहले आपकी बुझाऊँगा। दूसरे ने कहा, पहले अपनी बुझाऊँगा। तीसरे ने कहा, एक हाथ से अपनी और दूसरे हाथ से आपकी बुझाऊँगा।

बादशाह ने तीसरे आदमी की नियुक्ति कर दी और दरबारियों से कहा—"जो अपनी उपेक्षा करके दूसरों का भला करता है वह

अव्यावहारिक है। जो स्वार्थ को ही सर्वोपरि समझता है वह नीच है और जो अपनी और दूसरों की भलाई का समान रूप से ध्यान रखता है उसे ही सज्जन कहना चाहिए। मुझे सज्जन की आवश्यकता थी, सो उस तीसरे आदमी की नियुक्ति की गई।''

इन्हें पता नहीं कि वह क्या कर रहे हैं?

जब नगर-नायक विक्षिप्त जनता की भीड़ लेकर ईसा को उनके निवास स्थान पर गिरफ्तार करने लगे तो उनके शिष्य शमौन पतरस से न देखा गया, वह तलवार निकाल कर गिरफ्तार करने वालों की ओर झपटा।

महात्मा ईसा ने उसे रोकते हुए कहा—''शमौन! तलवार म्यान में करो। इन पर क्रोध मत करो। यह बेचारे नहीं जानते कि यह क्या कर रहे हैं। किंतु तुम्हें तो जानना चाहिए कि तुमको क्या करना चाहिए और क्या कर रहे हो। यदि इनको अपने कृत्य का ज्ञान रहा होता, तो ये ऐसा कदापि नहीं करते। अज्ञानी व्यक्ति क्रोध के नहीं, दया के पात्र हैं।''

वातावरण शांत रखो और जो मृत्यु का प्याला परमपिता ने मेरे लिए पीने को भेजा है, उसे मुझे खुशी से पीने दो। मेरे कर्त्तव्य में हिंसा की दुर्गंध न भरो। इन्हें खुद क्षमा करो और परमपिता से भी क्षमा कर देने के लिए प्रार्थना करो।

न्याय रक्षा

ईरान का बादशाह नौशेरवाँ एक दिन शिकार खेलते हुए दूर निकल गया। दोपहर का समय हो जाने से एक गाँव के पास डेरा डालकर भोजन की व्यवस्था की गई। अकस्मात मालूम हुआ कि नमक नहीं है। इस पर सेवक पास के घर में जाकर थोड़ा सा नमक ले आया। बादशाह ने उसे देखकर पूछा—''नमक के दाम दे आए?'' उसने उत्तर दिया—''इतने से नमक का दाम क्या दिया जाए?'' नौशेरवाँ ने फौरन कहा—''अब से आगे कभी ऐसा काम मत करना और इस नमक की

कीमत इसी समय जाकर दे आओ। तुम नहीं समझते कि अगर बादशाह किसी के बाग से बिना दाम दिए एक फल ले ले तो उसके कर्मचारी बाग को ही उजाड़कर खा जाएँगे।" नौशेरवाँ की इसी न्यायशीलता ने उसके राज्य की जड़ जमा दी और आज भी शासकों के लिए उसका आचरण आदर्शस्वरूप माना जाता है।

छोटी भूल का बड़ा दुष्परिणाम

कहते हैं कि कलंग देश का राजा मधुपर्क खा रहा था। उसके प्याले में से थोड़ा सा शहद टपक कर जमीन पर गिर पड़ा।

उस शहद को चाटने मक्खियाँ आ गईं। मक्खियों को इकट्ठी देख छिपकली ललचाई और उन्हें खाने के लिए आ पहुँची। छिपकली को मारने बिल्ली पहुँची। बिल्ली पर दो-तीन कुत्ते टूटे। बिल्ली भाग गई और कुत्ते आपस में लड़कर घायल हो गए।

कुत्तों के मालिक अपने-अपने कुत्तों के पक्ष का समर्थन करने लगे और दूसरे का दोष बताने लगे। उस पर लड़ाई ठन गई। लड़ाई में दोनों ओर की भीड़ बढ़ी और आखिर सारे शहर में बलवा हो गया। दंगाइयों को मौका मिला तो सरकारी खजाना लूटा और राजमहल में आग लगा दी।

राजा ने इतने बड़े उपद्रव का कारण पूछा तो मंत्री ने जाँचकर बताया कि भगवान आपके द्वारा असावधानी से गिराया हुआ थोड़ा सा शहद ही इतने बड़े दंगे का कारण बन गया है।

तब राजा समझा कि छोटी सी असावधानी भी मनुष्य के लिए कितना बड़ा संकट उत्पन्न कर सकती है।

कर्त्तव्यनिष्ठा का पुरस्कार

बादशाह अब्बास अपने एक पदाधिकारी के यहाँ दावत में गए। वहाँ उन्होंने और सब साथियों ने इतनी मदिरा पी ली कि किसी के होश हवाश दुरस्त नहीं रहे। नशे की झोंक में बादशाह खड़ा हो गया और

उसी पदाधिकारी के अंतःपुर की ओर जाने लगा। पर दरवाजे पर उस पदाधिकारी का नौकर इस प्रकार खड़ा था कि उसे हटाए बिना बादशाह भीतर नहीं घुस सकते थे। उन्होंने नौकर से कहा—"अभी यहाँ से हट जा वरना मैं तलवार से तेरा सिर उड़ा दूँगा।"

नौकर ने सिर झुकाकर कहा—"हजूर मेरे देश के स्वामी हैं, इसलिए मैं आप पर हाथ तो उठा नहीं सकता। पर यह निश्चय है कि आप मेरी लाश पर पैर रखकर ही भीतर जा सकेंगे। पर याद रखिए कि भीतर जाने पर बेगमें तलवार लेकर आपका मुकाबला करेंगी, क्योंकि जब उनकी इज्जत पर हमला किया जाएगा तो वे अपना बचाव जरूर करेंगी।"

बादशाह का नशा सेवक की खरी बातों को सुनकर ठंढा पड़ गया और वे वापस चले गए। दूसरे दिन उस पदाधिकारी ने बादशाह से कहा—"मेरे जिस नौकर ने कल आपके सामने बेअदबी की थी, उसे मैंने दंडस्वरूप अपने यहाँ से निकाल दिया है।"

बादशाह ने कहा—"यह तो बहुत अच्छा हुआ, मैं उसे आपसे माँगकर अपने अंगरक्षकों का सरदार बनाना चाहता था। बस अब आप उसे बुलाकर मेरे पास भेज दीजिए।" सच्चे व्यक्ति की कदर सभी जगह होती है।

विश्वासघात

रोम की राज्यसभा के सभापति जुलियस सीजर पर षड्यंत्रकारियों ने आक्रमण किया। षड्यंत्रकारी उन पर आघात कर रहे थे। सीजर निरस्त्र थे फिर भी किसी प्रकार अपना बचाव करने का प्रयत्न कर रहे थे। इसी समय उनके परम विश्वासी मित्र ब्रूट्स ने भी उन पर आक्रमण किया। अब असह्य हो गया। मित्र के विश्वासघात से उनका हृदय फट गया। सीजर ने ब्रूट्स की ओर देखकर कहा—"मित्र! तुम भी.........।"

सीजर ने अपने बचाव का प्रयत्न छोड़ दिया और आहत होकर मृत्यु की गोद में गिर पड़ा।

विरोधी को प्रवेश नहीं

विकासवाद के अन्वेषक चार्ल्स डार्विन जब मरणासन्न थे तो उनके घर वालों ने पादरी को बुलाया और कहा—"इनकी आत्मा को शांति देने वाला धर्म संस्कार करा दीजिए।"

पादरी ने कहा—"यह महोदय नास्तिक रहे हैं। नास्तिक को स्वर्ग नहीं मिल सकता। इनके लिए धर्म संस्कार मैं तभी करा सकूँगा जब यह अपने आस्तिक होने की आस्था प्रकट करें।"

डार्विन की छोटी पुत्री मार्था ने पादरी से पूछा—"मेरे पापा को, जो आजीवन संत की तरह रहे हैं, क्या संस्कार के अभाव में फिर भी नरक ही जाना पड़ेगा? क्या इन्हें स्वर्ग में बिना धर्म संस्कार के ही स्थान न मिल जाएगा?"

पादरी बोला कि स्वर्ग तो ईश्वर का घर है, वे अपने विरोधियों को क्यों प्रवेश करने देंगे!

ईर्ष्या साँपिनि को न शतावा

जंगल में गाय और घोड़ा घास चर रहे थे। घोड़े को ईर्ष्या हुई कि वह गाय के सीगों के डर से अच्छी घास नहीं खा पाता, किसी तरह उस पर काबू पाया जाए। तभी वहाँ इनसान आ निकला और उसने दोनों को ललचाई नजर से देखा। घोड़ा इनसान के पास आकर बोला—"देखते क्या हो, गाय का मीठा दूध पीकर अपनी भूख मिटाओ।" पर वह तो मुझसे तेज दौड़ सकती है, उस पर काबू कैसे पा सकूँगा? मेरी पीठ पर सवार हो जाओ, मैं गाय से तेज दौड़ सकता हूँ? इनसान घोड़े की पीठ पर सवार हो गया। उसने पहले घोड़े को गुलाम बनाया और फिर गाय को काबू में किया। उसी दिन से दोनों पशु इनसान के गुलाम हैं।

मान्यता अपनी-अपनी

किसी अरब व्यापारी को पता चला कि इथोपिया के लोगों के पास चाँदी बहुत अधिक है। उसे वहाँ जाकर व्यापार करने की सूझी

और एक दिन सैकड़ों ऊँट प्याज लादकर वह इथोपिया के लिए चल भी पड़ा।

इथोपियावासियों ने पहले कभी प्याज नहीं खाया था। प्याज खाकर वे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने सब प्याज खरीद लिया और उसके बराबर सोना-चाँदी तौल दिया। व्यापारी बहुत प्रसन्न हुआ। धनवान बनकर देश लौटा।

एक दूसरे व्यापारी को इसका पता चला तो उसने भी इथोपिया जाने की ठानी। उसने प्याज से भी अच्छी वस्तु लहसुन लादी और इथोपिया जा पहुँचा। वहाँ के लोगों ने लहसुन चखा तो प्रसन्नता से नाच उठे। सारा लहसुन उन्होंने ले लिया पर बदले में दें क्या, यह प्रश्न उठा। उनने देखा चाँदी तो बहुत है पर सोने से भी अच्छी वस्तु उनके पास प्याज है, इसलिए प्याज से दूसरे व्यापारी की बोरियाँ लाद दीं।

व्यापारी खीझ उठा पर बेचारा करता क्या, चुपचाप प्याज लेकर घर लौट आया। बेचारा व्यापारी समझ नहीं पा रहा था कि अमूल्यता की कसौटी क्या है? उसे लगा यह सब अपने-अपने मन की मान्यताओं और प्रसन्नता के खेल हैं। सत्य तो कुछ और ही है, जिसे मनुष्य नहीं समझ पा रहा।

जन्मना जायते शूद्रः

भगवान बुद्ध अनाथ पिंडक के जैतवन में ग्रामवासियों को उपदेश कर रहे थे। शिष्य अनाथ पिंडक भी समीप ही बैठा धर्मचर्चा का लाभ ले रहा था।

तभी सामने से महाकाश्यप मौद्गल्यायन, सारिपुत्र, चुंद और देवदत्त आदि आते हुए दिखाई दिए। उन्हें देखते ही बुद्ध ने कहा— "वत्स! उठो, यह ब्राह्मण मंडली आ रही है, उसके लिए योग्य आसन का प्रबंध करो।"

अनाथ पिंडक ने आयुष्मानों की ओर दृष्टि दौड़ाई, फिर साश्चर्य कहा—"भगवन्! आप संभवतः इन्हें जानते नहीं। ब्राह्मण तो इनमें कोई एक ही है, शेष कोई क्षत्रिय, कोई वैश्य और कोई अस्पृश्य भी है।"

गौतम बुद्ध अनाथ पिंडक के वचन सुनकर हँसे और बोले—"तात! जाति जन्म से नहीं, गुण, कर्म और स्वभाव से पहचानी जाती है। श्रेष्ठ रागरहित,धर्मपरायण, संयमी और सेवाभावी होने के कारण ही इन्हें मैंने ब्राह्मण कहा है। ऐसे पुरुष को तू निश्चय ही ब्राह्मण मान, जन्म से तो सभी जीव शूद्र होते हैं।"

स्वप्न पर मत रीझो

एक युवक ने स्वप्न में देखा कि वह किसी बड़े राज्य का राजा हो गया है। स्वप्न में मिली इस आकस्मिक विभूति के कारण उनकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा।

प्रात:काल पिता ने काम पर चलने को कहा, माँ ने लकड़ियाँ काट लाने की आज्ञा दी, धर्मपत्नी ने बाजार से सौदा लाने का आग्रह किया। पर युवक ने कोई भी काम न कर एक ही उत्तर दिया—"मैं राजा हूँ, मैं कोई काम कैसे कर सकता हूँ?"

घर वाले बड़े हैरान थे, आखिर किया क्या जाए? तब कमान सँभाली उनकी छोटी बहिन ने। एक-एक कर उसने सबको बुलाकर चौके में भोजन करा दिया। अकेले खयाली महाराज ही बैठे के बैठे रह गए।

शाम हो गई,भूख से आँतें कुलबुलाने लगीं। आखिर जब रहा नहीं गया तो उसने बहन से कहा—"क्यों री! मुझे खाना नहीं देगी क्या?"

बालिका ने मुँह बनाते हुए कहा—"राजाधिराज! रात आने दीजिए, परियाँ आकाश से उतरेंगी, वही आपके उपयुक्त भोजन प्रस्तुत करेंगी। हमारे रूखे-सूखे भोजन से आपको संतोष कहाँ होता?"

व्यर्थ की कल्पनाओं में विचरण करने वाले युवक ने हार मानी और मान लिया कि धरती पर रहने वाले मनुष्य को निरर्थक लौकिक एवं भौतिक कल्पनाओं में ही न डूबे रहना चाहिए वरन जीवन का

जो शाश्वत और सनातन सत्य है उसे प्राप्त और धारण करने का प्रयत्न भी करना चाहिए। इतना मान लेने पर ही उसे भोजन मिल सका।

अपना बल क्षीण न करो

समुद्र से जल भरकर वापस लौट रहे मरुत देवों को विंध्याचल शिखर ने बीच में ही रोक दिया। मरुत विंध्याचल के इस कृत्य पर बड़े कुपित हुए और युद्ध ठानने को तैयार हो गए।

विंध्याचल ने बड़े सौम्य भाव से कहा—"महाभाग! हम आपसे युद्ध करना नहीं चाहते, हमारी तो एक ही अभिलाषा है कि आप यह जो जल लिए जा रहे हैं वह आपको जिस उदारता के साथ दिया गया है उसी उदारता के साथ आप भी इसे प्यासी धरती को पिलाते चलें तो कितना अच्छा हो।"

मरुतों को अपने अपमान की पड़ी थी सो वे शिखर से भिड़ ही तो गए पर जितना युद्ध किया उन्होंने उतना ही उनका बल क्षीण होता गया और धरती को अपने आप जल मिल गया। मनुष्य न चाहे तो भी ईश्वर अपना काम करा ही लेता है पर श्रद्धापूर्वक करने का तो आनंद ही कुछ और है।

शुभचिंतक की पहचान

एक राजा बड़ा सरल स्वभाव का था। उसके प्रशंसक और भक्त बनकर अनेकों लोग राजदरबार में पहुँचते और कुछ ठग कर ले जाते। एक से दूसरे को खबर लगी। चर्चा फैली। कुछ न कुछ लाभ उठाने की इच्छा से अगणित लोग राजा के प्रशंसक और शुभचिंतक बनकर दरबार में पहुँचने लगे। इस बढ़ती भीड़ को देखकर राजा स्वयं हैरान रहने लगा।

एक दिन राजा ने विचारा कि इतने लोग सच्चे शुभचिंतक नहीं हो सकते। इनमें से असली और नकली की परख करनी चाहिए।

राजा ने पुरोहित से परामर्श करके दूसरे दिन बीमार बनने का बहाना बना लिया और घोषणा करा दी कि पाँच व्यक्तियों का रक्त मिलने से ही रोग की चिकित्सा हो सकेगी। रोग ऐसा भयंकर है कि इसके अतिरिक्त और कोई इलाज नहीं। सो जो राजा के शुभचिंतक हों अपना प्राणदान देने के लिए उपस्थित हों।

घोषणा सुनकर राज्यभर में हलचल मच गई। एक से एक बढ़ कर अपने को शुभचिंतक बताने वालों में से एक भी दरबार में न पहुँचा। राजा और उसके पुराहित दो ही बैठे हुए असली-नकली की परीक्षा के इस खेल पर विनोद करने लगे।

पुरोहित ने कहा—"राजन्! हमारी ही तरह परमात्मा भी अपने सच्चे-झूठे भक्तों की परीक्षा लेता रहता है। परमात्मा का प्रयोजन पूरा करने वाले सच्चे भक्त संसार में नहीं के बराबर दीखते हैं, जब कि उससे कुछ याचना करने वाले स्वार्थियों की भीड़ सदा ही उसके दरबार में लगी रहती है।"

सुजाता की खीर

सुजाता ने खीर दी, बुद्ध ने उसे ग्रहण कर परम संतोष का अनुभव किया। उस दिन उनकी जो समाधि लगी तो फिर सातवें दिन जाकर टूटी। जब वे उठे, उन्हें आत्म-साक्षात्कार हो चुका था।

नेरंजरा नदी के तट पर प्रसन्नमुख आसीन भगवान बुद्ध को देखने गई सुजाता बड़ी विस्मित हो रही थी कि यह सात दिन तक एक ही आसन पर कैसे बैठे रहे? तभी सामने से एक शव लिए जाते हुए कुछ व्यक्ति दिखाई दिए। उस शव को देखते ही भगवान बुद्ध हँसने लगे।

सुजाता ने प्रश्न किया—"योगिराज! कल तक तो आप शव देखकर दुखी हो जाते थे, आज वह दुःख कहाँ चला गया?"

भगवान बुद्ध ने कहा—"बालिके! सुख-दुःख मनुष्य की कल्पना मात्र है। कल तक जड़-वस्तुओं में आसक्ति होने के कारण यह भय था कि कहीं वह न छूट जाए, वह न बिछुड़ जाए। यह भय ही दुःख का

कारण था, आज मैंने जान लिया कि जो जड़ है, उसका तो गुण ही परिवर्तन है, पर जिसके लिए दु:ख करते हैं, वह तो न परिवर्तनशील है न नाशवान। अब तू ही बता जो सनातन वस्तु पा ले, उसे नाशवान वस्तुओं का क्या दु:ख।"

सुजाता यह उत्तर सुनकर प्रसन्न हुई और स्वयं भी आत्म-चिंतन में लग गई।

प्रमादी की पहचान

एक दिन भिक्षु संगाम जी ने भगवान बुद्ध से पूछा—"भगवन्! संसार के प्रमाद में पड़े हुए की क्या पहचान है?" भगवान बुद्ध ने तत्काल कोई उत्तर न दिया और बातें करते रहे।

दूसरे दिन कुंडिया नगर की कोलिय पुत्री सुप्पवासा के यहाँ उनका भोज था। सुप्पवासा सात वर्ष तक गर्भ धारण करने का कष्ट भोग चुकी थी। भगवान बुद्ध की कृपा से ही उसे इस कष्ट से छुटकारा मिला था, इसी प्रसन्नता में वह भिक्षु-संघ को भोज दे रही थी।

जब सुप्पवासा तथागत को भोजन करा रही थी, उसका पति नवजात शिशु को लिए पास ही खड़ा था। सात वर्ष तक गर्भ में रहने के कारण बालक जन्म से ही विकसित था। देखने में अति सुंदर। उसके हँसने और क्रीड़ा करने की गतिविधियाँ बड़ी मनमोहक थीं। बार-बार माँ की गोद में जाने के लिए मचल रहा था।

भगवान बुद्ध ने मुस्कराते हुए पूछा—"बेटी सुप्पवासा! तुझे ऐसे-ऐसे पुत्र मिलें तो कितने और पुत्रों की कामना तू कर सकती है?"

सुप्पवासा ने कहा—"भगवन्! ऐसे सात पुत्र हों तो अच्छा है।"

संगाम जी बगल में ही बैठे थे। कल तक जो प्रसव पीड़ा से बुरी तरह व्याकुल थी, आज फिर पुत्रों की कामना कर रही है, यह देखकर संगाम जी बड़े आश्चर्यचकित हुए।

बुद्ध ने हँसकर कहा—"संगाम जी चौंकिए मत, तुम्हारे कल के प्रश्न का उत्तर यही तो है।"

प्रगति के अवरोध

किसी ने कहा—"मनुष्य बड़ा, बहुत बड़ा हो सकता था, लेकिन दोष ही उसे देवत्व तक पहुँचने से लाचार कर देते हैं। सहज, प्रकृतिसिद्ध अहं पर विजय प्राप्त कर सकना, सत्पुरुषार्थ के एक कण से भी संभव है। किसी पराक्रम और वैभव को उद्‌घाटित करने के बदले लोग निंदा और ईर्ष्या की कोठरी में छिद्रान्वेषण और दोष-दर्शन के सहारे अनायास जा पहुँचते हैं, और तब परिणाम होता है कि हम अपना सब कुछ गँवा बैठते हैं।"

"दूसरे के दोषों में जिसका दर्शन हमें होता है, वह दूसरे का न होकर हमारे मन का गरल ही तो है, जिसे हम दूसरों पर सर्वथा लादने के असफल प्रयत्न में, मुक्तिकामी की भाँति अपने को निष्कलंक प्रमाणित करने का प्रयत्न करते हैं।"

श्रोता का चेहरा प्रफुल्लित हो उठा—कमलदलों की तरह।

भाव की भूख

यहूदी अनपढ़ था और ग्रामीण भी। किसी ने उसे बता दिया कि जिस दिन प्रायश्चित पर्व हो उस दिन खूब अच्छा-अच्छा खाना चाहिए और मिले तो शराब भी पीनी चाहिए। सो जब अगला 'प्रायश्चित पर्व' आया तो एक दिन पूर्व ही उसने खूब डटकर खाया, शराब पी और नशे में धुत्त हो गया।

प्रातःकाल नींद टूटी तो भोले-भाले ग्रामीण यहूदी ने देखा कि उसका साथी तो प्रायश्चित पर्व की लगभग आधी प्रार्थना पूरी कर चुका है। उसे तो एक भी मंत्र याद न था, सो उसे अपने आप पर भारी ग्लानि हुई। कल शराब न पीकर मंत्र याद कर लेता तो कितना अच्छा होता, यह सोचकर वह बड़ा दुखी हुआ।

सबको प्रार्थना करते देखकर वह वहीं बैठ गया और वर्णमाला के अक्षरों का ही पाठ करता हुआ भावना करने लगा—"हे प्रभु! मुझे

तो कोई मंत्र याद नहीं, इन अक्षरों को जोड़कर तुम्हीं मंत्र बना लेना। मैं तो तुम्हारा दास हूँ, पूजा के लिए नए भाव कहाँ से लाऊँ?" जब तक दूसरे लोग प्रार्थना करते रहे, वह ऐसे ही भगवान का ध्यान करता रहा।

सायंकाल जब वे दोनों सामूहिक प्रार्थना में सम्मिलित हुए तो धर्मगुरु रबी ने उस ग्रामीण को भक्तों की अग्र-पंक्ति में रखा। यह देखकर उसके साथी ने आपत्ति की—"श्रीमान जी! इसे तो मंत्र भी अच्छी तरह याद नहीं।"

"तो क्या हुआ" रबी ने आर्द्र कंठ से कहा—"इनके पास शब्द नहीं, भाव तो हैं। भगवान तो भाव का ही भूखा है, मंत्र तो हमारे-तुम्हारे लिए हैं।"

स्वर्ग और नरक भावनाओं में

एक गुरु के दो शिष्य थे। दोनों किसान थे। भगवान का भजन-पूजन भी दोनों करते थे। स्वच्छता और सफाई पर भी दोनों की आस्था थी, किंतु एक बड़ा सुखी था, दूसरा बड़ा दुखी।

गुरु की मृत्यु पहले हुई पीछे दोनों शिष्यों की भी। दैवयोग से स्वर्गलोक में भी तीनों एक ही स्थान पर जा मिले, पर स्थिति यहाँ भी पहले जैसी ही थी। जो पृथ्वी में सुखी था, यहाँ भी प्रसन्नता अनुभव कर रहा था और जो आएदिन क्लेश-कलह आदि के कारण पृथ्वी में अशांत रहता था, यहाँ भी अशांत दिखाई दिया।

दुखी शिष्य ने गुरुदेव के समीप जाकर कहा—"भगवन्! लोग कहते हैं, ईश्वर भक्ति से स्वर्ग में सुख मिलता है पर हम तो यहाँ भी दुखी के दुखी रहे।"

गुरु ने गंभीर होकर उत्तर दिया—"वत्स! ईश्वर भक्ति से स्वर्ग तो मिल सकता है पर सुख और दु:ख मन की देन हैं। मन शुद्ध हो तो नरक में भी सुख ही है और मन शुद्ध नहीं तो स्वर्ग में भी कोई सुख नहीं है।"

बुद्धिहीन वैज्ञानिक

एक बार चार मित्र यात्रा पर निकले। उनमें तीन बुद्धिहीन वैज्ञानिक थे और एक बुद्धिमान अवैज्ञानिक। मार्ग में उन्हें एक मरे हुए शेर का अस्थिपंजर मिला। बुद्धिहीन वैज्ञानिकों ने सोचा कि क्यों नहीं हम इस पर अपनी विद्या की परीक्षा कर लें। तुरंत एक ने उसका अस्थि संचय किया, दूसरे ने उसमें चर्म-मांस और रुधिर संचारित किया और तीसरा उसमें प्राण डालने ही वाला था कि चौथे बुद्धिमान अवैज्ञानिक ने कहा—"अरे-अरे, यह आप क्या कर रहे हैं ? आप सिंह को जीवित करने जा रहे हो। वह जीवित होते ही हमें खा जाएगा। पहले अपनी रक्षा का उपाय तो कर लो।" लेकिन उसकी बात किसी ने नहीं मानी।

लाचार, वह अकेला वृक्ष पर चढ़ गया। उधर तीसरे ने जैसे ही उसमें प्राण डाले शेर जीवित होकर उन तीनों को खा गया।

प्रत्यक्ष को देखने वाला आज का संसार भी इन बुद्धिहीन वैज्ञानिकों की तरह है। जो शरीर के लिए तो साधन बढ़ाते चले जा रहे हैं, पर आत्मा की ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते।

निराश न लौटाओ

भगवान बुद्ध मृत्यु-शैया पर पड़े थे। उनकी जीवन-ज्योति के अस्त होने में कुछ ही विलंब था।

सुभद्र नामक साधु ने यह समाचार सुना तो वह अपनी धर्म संबंधी कुछ शंकाओं को निवारण करने के उद्‌देश्य से उनकी सेवा में उपस्थित हुआ। पर आनंद ने, जो कुटी के द्वार पर स्थित था उसे भीतर जाने से रोका और कहा—"भगवान को इस समय कष्ट देना उचित न होगा।" पर सुभद्र बराबर आग्रह करता रहा कि उसे भगवान का दर्शन कर लेने दिया जाए।

बुद्ध जी ने भीतर पड़े हुए इस चर्चा को अस्पष्ट रूप से सुना और वहीं से कहा—"आनंद! सुभद्र को भीतर आने दो। वह ज्ञान-प्राप्ति की इच्छा से आया है, मुझे कष्ट देने नहीं आया।"

सुभद्र ने जैसे ही भीतर जाकर करुणा की उस शांत मूर्ति को देखा, वैसे ही बुद्ध जी के उपदेश उसके हृदय में प्रविष्ट हो गए और वह प्रव्रज्या लेकर बौद्ध भिक्षु बन गया। बुद्ध भगवान ने शरीरांत होते हुए भी किसी ज्ञान के अभिलाषी को निराश नहीं किया।

साधुओं के लिए संदेश

संसार के कुशल समाचार जानने के लिए एक दिन भगवान ने नारद को पृथ्वी पर भेजा।

उन्हें सबसे पहले एक दीन दरिद्र वृद्ध पुरुष मिला जो अन्न-वस्त्र के लिए तरस रहा था। नारद जी को उसने पहचाना तो अपनी कष्ट कथा रो-रोकर सुनाने लगा और कहा—"जब आप भगवान से मिलें तो मेरे गुजारे का प्रबंध उनसे करा दें।"

नारद उदास मन आगे बढ़े तो एक धनी से उनकी भेंट हो गई। उसने भी नारद जी को पहचाना तो उसने खिन्न होकर कहा—"मुझे भगवान ने किस जंजाल में फँसा दिया। थोड़ा मिलता तो मैं शांति से रहता और कुछ भजन-पूजन कर पाता, पर इतनी दौलत तो सँभाले नहीं सँभलती। ईश्वर से मेरी प्रार्थना करें कि इस जंजाल को घटा दें।"

यह विषमता देवर्षि को अखरी। वे आगे चल ही रहे थे कि साधुओं की एक जमात से भेंट हो गई। जमात वाले उन्हें चारों ओर से घेरकर खड़े हो गए और बोले—"स्वर्ग में तुम अकेले ही मौज करते रहते हो। हम सबके लिए भी वैसे ही राजसी ठाठ जुटाओ, नहीं तो नारद बाबा चिमटे मार-मार कर तुम्हारा भुस बना देंगे।"

घबराए नारद ने उनकी माँगी वस्तुएँ मँगा दी और जान छुड़ा कर भगवान के पास वापस लौट गए। जो कुछ देखा वही उनके लिए बहुत था और देखने की उन्हें इच्छा ही न रही।

भगवान ने नारद से उस यात्रा का वृतांत पूछा तो देवर्षि ने तीनों घटनाएँ कह सुनाई। नारायण हँसे और बोले—"देवर्षि, मैं कर्म के अनुसार ही किसी को कुछ दे सकने में विवश हूँ। जिसकी कर्मठता

समाप्त हो चुकी उसे मैं कहाँ से दूँ। तुम अगली बार जाओ तो उस दीन-हीन वृद्ध से कहना कि दरिद्रता के विरुद्ध लड़े और सुविधा के साधन जुटाने का प्रयत्न करे तभी उसे दैवी सहायता मिल सकेगी। इसी प्रकार उस धनी से कहना कि यह दौलत उसे दूसरों की सहायता के लिए दी गई है। यदि वह संग्रही बना रहा तो जंजाल ही नहीं, आगे चलकर वह विपत्ति भी बन जाएगी।"

नारद जी ने पूछा—"और उस साधु मंडली से क्या कहूँ?" भगवान के नेत्र चढ़ गए और बोले—"उन दुष्टों से कहना कि त्यागी और परमार्थी का वेष बनाकर आलस्य और स्वार्थपरता की प्रवंचना इतनी असह्य है कि उन्हें नरक के निकृष्टतम स्थान में अनंत काल तक पड़ना पड़ेगा।"

नारी का आभूषण

मगध की सौंदर्य साम्राज्ञी वासवदत्ता उपवन विहार के लिए निकली। उसका साज शृंगार उस राजवधू की तरह था जो पहली बार ससुराल जाती है।

एकाएक दृष्टि उपवन-ताल के किनारे स्फटिक शिला पर बैठे तरुण संन्यासी उपगुप्त पर गई। चीवरधारी ने बाह्य सौंदर्य को अंतर्निष्ठ कर लिया था और उस आनंद में कुछ ऐसा निमग्न हो गया कि उसे बाह्य जगत की कोई सुध न रही थी।

हवा में पायल की स्वर झंकृति और सुगंध की लहरें पैदा करती वासवदत्ता समीप जा खड़ी हुई। भिक्षु ने नेत्र खोले। वासवदत्ता ने चपल-भाव से पूछा—"महामहिम! बताएँगे नारी का सर्वश्रेष्ठ आभूषण क्या है?"

"जो उसके सौंदर्य को सहज रूप से बढ़ा दे"—तपस्वी ने उत्तर दिया।

सहज का क्या अर्थ है? चंचल नेत्रों को उपगुप्त पर डालती वासवदत्ता ने फिर प्रश्न दोहराया।

उपगुप्त ने सौम्य मुस्कान के साथ कहा—"देवि! आत्मा जिन गुणों को बिना किसी बाह्य इच्छा, आकर्षण, भय या छल के अभिव्यक्त करे, उसे ही सहज भाव कहते हैं। सौंदर्य को जो बिना किसी कृत्रिम साधन के बढ़ाता हो, नारी का वह भाव ही सच्चा आभूषण है।"

किंतु वह भी वासवदत्ता समझ न सकी। उसने कहा—"मैं स्पष्ट जानना चाहती हूँ, यों पहेलियों में आप मुझे न उलझाएँ।"

उपगुप्त अब कुछ गंभीर हो गए और बोले—"भद्रे! यदि आप और स्पष्ट जानना चाहती हैं तो इन कृत्रिम सौंदर्य परिधान और आभूषणों को उतार फेंकिए।"

पैरों की थिरकन के साथ वासवदत्ता ने एक-एक आभूषण उतार दिए। संन्यासी निर्निमेष वह क्रीड़ा देख रहा था, निश्छल, मौन, विचार-मग्न वासवदत्ता ने अब परिधान उतारने भी प्रारंभ कर दिए। साड़ी, चुनरी, लहँगा और कंचुकि सब उतर गए। शुभ्र निर्वसन देह के अतिरिक्त शरीर पर कोई पट-परिधान शेष नहीं रहा। तपस्वी ने कहा—"देवि! किंचित मेरी ओर देखिए।" किंतु इस बार वासवदत्ता लज्जा से आविर्भूत ऊपर को सिर न उठा सकी। तपस्वी ने कहा—"देवि! यही लज्जा ही नारी का सच्चा आभूषण है।" और जब तक उसने वस्त्राभूषण पुनः धारण किए उपगुप्त वहाँ से जा चुके थे।

आयु कुल चार वर्ष

नौशेरवाँ का, जो भी मिले उसी से कुछ न कुछ सीखने का स्वभाव हो गया था। अपने इस गुण के कारण ही उन्होंने अपने जीवन के स्वल्प काल में महत्त्वपूर्ण अनुभव अर्जित कर लिए थे।

राजा नौशेरवाँ एक दिन वेष बदलकर कहीं जा रहे थे। मार्ग में उन्हें एक वृद्ध किसान मिला। किसान के बाल पक गए थे पर शरीर में जवानों जैसी चेतनता विद्यमान थी। उसका रहस्य जानने की इच्छा से नौशेरवाँ ने पूछा—"महानुभाव! आपकी आयु कितनी होगी?"

वृद्ध ने मुस्कान भरी दृष्टि नौशेरवाँ पर डाली और हँसते हुए उत्तर दिए—"कुल ४ वर्ष।" नौशेरवाँ ने सोचा बूढ़ा दिल्लगी कर रहा है पर सच-सच पूछने पर भी जब उसने ४ वर्ष ही आयु बताई तो उन्हें कुछ क्रोध आ गया। एक बार तो मन में आया कि उसे बता दूँ कि मैं साधारण व्यक्ति नहीं नौशेरवाँ हूँ।" पर उन्होंने अपने विवेक को सँभाला और विचार किया कि उत्तेजित हो उठने वाले व्यक्ति सच्चे जिज्ञासु नहीं हो सकते, किसी के ज्ञान का लाभ नहीं ले सकते, इसलिए उठे हुए क्रोध का उफान वहीं शांत हो गया।

अब नौशेरवाँ ने नए सिरे से पूछा—"पितामह! आपके बाल पक गए, शरीर में झुर्रियाँ पड़ गईं, लाठी लेकर चलते हैं, मेरा अनुमान है आप ८० वर्ष से कम के न होंगे, फिर आप अपने को ४ वर्ष का कैसे बताते हैं?"

वृद्ध ने इस बार गंभीर होकर कहा—"आप ठीक कहते हैं, मेरी आयु ८० वर्ष की है, किंतु मैंने ७६ वर्ष धन कमाने, ब्याह शादी और बच्चे पैदा करने में बिताए, ऐसा जीवन तो कोई पशु भी जी सकता है, इसलिए उसे मनुष्य की, अपनी जिंदगी नहीं किसी पशु की जिंदगी मानता हूँ।"

इधर चार वर्ष से समझ आई। अब मेरा मन ईश्वर उपासना, जप, तप, सेवा, सदाचार, दया, करुणा, उदारता में लगा रहा है। इसलिए मैं अपने को ४ वर्ष का ही मानता हूँ। नौशेरवाँ वृद्ध का उत्तर सुनकर अति संतुष्ट हुए और प्रसन्नतापूर्वक अपने राजमहल लौटकर सादगी, सेवा और सज्जनता का जीवन जीने लगे।

सुलस का हृदय-परिवर्तन

राजगृही में एक कसाई रहता था। नाम था—'काल कसूरी'। यथा नाम तथा गुण। वह प्रतिदिन एक सौ भैसों का वध किया करता था। धीरे-धीरे यह वृत्ति स्वभाव बन गई। वध किए बिना उसे चैन न मिलता।

एक दिन उसने एक भैंसे पर तलवार चलाई। भैंसा मजबूत और बलवान था, कटा नहीं। सारी शक्ति लगाकर छटपटाया तब पिता की सहायता के लिए पास खड़ा सुलस भी जुट गया। उथल-पुथल में तलवार की नोंक बिचक गई और सुलस के पाँव में लग गई। उससे बच्चे को तीव्र वेदना हुई। उसने अनुभव किया कि भैंसा मूक प्राणी है बोल नहीं सकता तो क्या, पर इसे भी निस्संदेह ऐसी ही पीड़ा होती होगी। बालक ने निश्चय किया वह कभी भी पशुओं का वध नहीं करेगा।

पर यह बात काल कसूरी के लिए संभाव्य न थी। एक दिन राजा श्रेणिक ने आज्ञा दी—"काल कसूरी! तुम्हारा अंतिम समय है अब तुम पशु वध बंद कर दो।" किंतु उसने सविनय उत्तर दिया—"महाराज! मेरे लिए यह असंभव है। संस्कार कितना ही बुरा हो पक जाता है तो ऐसा ही होता है, तब पाप भी पाप नहीं लगता वरन उससे भी मोह हो जाता है।"

श्रेणिक ने उसे बंदीगृह में डाल दिया। पर वहाँ भी काल कसूरी की वह वृत्ति न छूटी। वह मिट्टी के भैंसे बनाता और लकड़ी की तलवार से उनका वध करता और इस तरह आत्म संतोष प्राप्त करता।

मृत्यु का समय पास आया। उसने अपने बच्चे सुलस को बुलाकर आग्रह किया—"वत्स! मुझे आशा है कि तुम मेरी अंतिम इच्छा पूर्ण करोगे।" बच्चे ने कहा—"पिताजी! मेरे स्वभाव से विपरीत न होगा वह हर कार्य करने को तैयार हूँ।"

काल कसूरी ने प्रसन्न होकर कहा—"मैं जानता हूँ, तेरी इच्छा और रुचि का मुझे ध्यान है। ऐसा कुछ न कहूँगा जिससे तेरी भावनाएँ दुखें। मेरी इच्छा है मेरे न रहने पर तुम घर के मुखिया बनो।" बालक सुलस ने उसे स्वीकार कर लिया।

काल कसूरी की मृत्यु हो गई। नियत दिन सुलस को मुखिया बनाने की रस्म अदा की गई। अंत में कुलदेवी के सम्मुख भैंसा खड़ा कर सुलस को बुलाया गया और उसका वध करने को कहा गया। पर वह स्तब्ध खड़ा रहा, तलवार ऊपर न उठी।

बुजुर्गों ने कहा—"बेटे, यह कुल परंपरा है। जो मुखिया बनता है उसे देवी को प्रसन्न करने के लिए रक्तदान करना ही पड़ता है।" अच्छा यह बात है? पिताजी की इच्छा अपूर्ण न रहे, यह कह कर उसने तलवार चलाई और अपना पाँव काट दिया। परिजनों ने कहा—"सुलस! तुमने यह क्या किया।" सब चीख-चिल्ला रहे थे।

उस दिन से उस परिवार की हिंसा सदैव के लिए छूट गई।

गुरु निष्ठा

प्राचीनकाल में गुरु अपने शिष्यों को विद्याध्ययन के साथ-साथ अनुशासन, शिष्टाचार, क्षमाशीलता, तितीक्षा आदि सद्गुणों की भी शिक्षा देते थे। उस समय यह विश्वास था कि विद्या के समान ही चरित्र भी आवश्यक है और उसके शिक्षण पर भी पूरा-पूरा ध्यान दिया जाना चाहिए।

ऋषि धौम्य के आश्रम में कितने ही छात्र पढ़ते थे। वे उन्हें पूरी तत्परता से पढ़ाते, साथ ही सद्गुणों की वृद्धि हुई या नहीं, इसकी परीक्षा भी लेते रहते थे।

एक दिन मूसलाधार वर्षा हो रही थी। गुरु ने अपने छात्र आरुणि से कहा—"बेटा! खेत में मेंड़ टूट जाने से पानी बाहर निकला जा रहा है। तुम जाकर मेंड़ बाँध आओ।" छात्र तत्काल उठ खड़ा हुआ और खेत की ओर चल दिया।

पानी का बहाव तेज था। छात्र से रुका नहीं। कोई उपाय न देख आरुणि उस स्थान पर स्वयं लेट गया। इस प्रकार पानी रोके रहने में उसे सफलता मिल गई।

बहुत रात बीत जाने पर भी जब छात्र न लौटा तो धौम्य को चिंता हुई और वे खेत पर उसे ढूँढ़ने पहुँचे। देखा तो छात्र पानी को रोके मेंड़ के पास पड़ा है। देखते ही गुरु की छाती भर आई। उनने उठाकर शिष्य को गले लगा लिया।

इसी प्रकार धौम्य ने अपने एक दूसरे शिष्य उपमन्यु को गौएँ चराते हुए अध्ययन करते रहने की आज्ञा दी। पर उसके भोजन का कुछ प्रबंध न किया और देखना चाहा कि देखें वह किस प्रकार अपना काम चलाता है। छात्र भिक्षा माँग कर भोजन करने लगा। वह भी न मिलने पर गौओं का दूध दुह कर अपना काम चलाने लगा।

धौम्य ने कहा—"बेटा उपमन्यु! छात्र के लिए उचित है कि आश्रम के नियमों का पालन करे और गुरु की आज्ञा बिना कोई कार्य न करे।" छात्र ने अपनी भूल स्वीकार की और कहा भविष्य में भूखा रहना तो बात क्या है, प्राण जाने का अवसर आने पर भी आश्रम की व्यवस्था का पालन करूँगा। उसने कई दिन निराहार होकर बहुत दुर्बल हो जाने तक अपनी इस निष्ठा की परीक्षा भी दी।

छात्र संतुष्ट थे कि उन्हें सद्गुण सिखाने के लिए कष्टसाध्य कार्यों के द्वारा प्रशिक्षित किया जाता है। सच्ची विद्या अक्षर ज्ञान में नहीं, सद्गुणों से परिपक्व श्रेष्ठ व्यक्तित्व में ही सन्निहित है।

'द' के तीन अर्थ

देव, दानव और मनुष्य की श्रेणी में बैठे हुए मानव प्राणी परस्पर लड़ते-झगड़ते रहते और धरती को खून से लाल करते रहते।

दुखी होकर धरती माता प्रजापति के पास पहुँची और अपनी दु:ख गाथा कह सुनाई। पुत्रों का रक्त बहते देखकर माता का दुखी होना स्वाभाविक भी था।

ब्रह्मा जी ने तीनों बच्चों को बुलाया और कहा—"इस प्रकार लड़ते-झगड़ते रहने से तुम संसार को नरक बना दोगे और स्वयं भी नष्ट हो जाओगे।"

अपराधी की तरह तीनों बालक शिर झुकाए खड़े थे। उसने पूछा—"पितामह! कोई ऐसी शिक्षा दीजिए जिस पर चलते हुए हम कलह से बचें और शांति तथा सुविधा प्राप्त करें।"

ब्रह्मा जी गंभीर हो गए, उन्होंने पूरे मनोयोग से शांति की शिक्षा का एक ही बीज मंत्र बोला—'द''द''द'। तीनों लड़के गंभीरतापूर्वक उसका अर्थ समझने और व्याख्या करने में लग गए।

सोच-विचार बहुत देर होता रहा तो स्तब्धता को भंग करते हुए प्रजापति ने बच्चों से पूछा—"हमारी सूत्र शिक्षा का क्या अर्थ समझे?"

देवता ने कहा—"द अर्थात दान। जिसके पास सुख-साधन मौजूद हैं उन्हें उनका उपयोग अपने ही लिए नहीं करना चाहिए वरन दूसरे अभावग्रस्तों को अपनी कमाई देकर आंतरिक आनंद प्राप्त करना चाहिए।"

अब मनुष्य की बारी आई। प्रजापति के प्रश्न का उत्तर देते हुए उसने कहा—"द अर्थात दमन। अंतःकरण में वासना और तृष्णा के जो तूफान उठते रहते हैं उन्हें दमन करना, षड् रिपुओं को परास्त करना, पौरुष और प्रयत्न में संलग्न रहना, आलस को दबाना। यही मैंने समझा है। मनुष्य का कल्याण इसी में दीखता है।"

असुर ने अपनी अभिव्यक्ति बताते हुए कहा—"द का अर्थ है दया। दुष्टता निर्दयी ही कर सकता है। जिसे दूसरों के कष्ट अपने कष्टों के समान चुभेंगे वह किसी को सताने की असुरता से बचेगा।"

ब्रह्मा जी ने स्वीकृति से शिर हिलाया और कहा—"यही मेरी शिक्षा का सारांश है जो तुमने समझा है। अपने दोषों को ढूँढ़ने, समझने और उन्हें सुधारने का प्रयत्न करते रहने पर ही तुम शांतिपूर्वक जीवनयापन कर सकोगे।"

इस धर्म शिक्षा का सारांश जानते तो सब हैं पर खेद है कि मानने वाले कोई विरले ही निकलते हैं। ब्रह्मा जी की शांति शिक्षा आज भी सबके सामने प्रस्तुत है, यदि इस पर चला जा सके तो आनंदमय जीवन में कोई अड़चन न रहे।

योग्यता की परख

युवक अंकमाल भगवान बुद्ध के सामने उपस्थित हुआ और बोला—"भगवन्! मेरी इच्छा है कि मैं संसार की कुछ सेवा करूँ, आप मुझे जहाँ भी भेजना चाहें भेज दें ताकि मैं लोगों को धर्म का रास्ता दिखाऊँ।"

बुद्ध हँसे और बोले—"तात! संसार को कुछ देने के पहले अपने पास कुछ होना आवश्यक है। जाओ पहले अपनी योग्यता बढ़ाओ फिर संसार की भी सेवा करना।"

अंकमाल वहाँ से चल पड़ा और कलाओं के अभ्यास में जुट गया। बाण बनाने से लेकर चित्रकला तक, मल्लविद्या से लेकर मल्लाहकारी तक जितनी भी कलाएँ हो सकती हैं उन सबका उसने १० वर्ष तक कठोर अभ्यास किया। अंकमाल की कला-विशारद के रूप में सारे देश में ख्याति फैल गई।

अपनी प्रशंसा से आप प्रसन्न होकर अंकमाल अभिमानपूर्वक लौटा और तथागत की सेवा में उपस्थित हुआ। अपनी योग्यता का बखान करते हुए उसने कहा—"भगवन्! अब मैं संसार के प्रत्येक व्यक्ति को कुछ न कुछ सिखा सकता हूँ। अब मैं ६४ कलाओं का पंडित हूँ।" भगवान बुद्ध मुसकराए और बोले—"अभी तो तुम कलाएँ सीखकर आए हो, परीक्षा दे लो तब उन पर अभिमान करना।"

अगले दिन भगवान बुद्ध एक साधारण नागरिक का वेष बदल कर अंकमाल के पास गए और उसे अकारण खरी-खोटी सुनाने लगे। अंकमाल क्रुद्ध होकर मारने दौड़ा तो बुद्ध वहाँ से मुसकराते हुए वापस लौट पड़े।

उसी दिन मध्याह्न दो बौद्ध श्रमण वेष बदल कर अंकमाल के समीप जाकर बोले—"आचार्य! आपको सम्राट हर्ष ने मंत्रिपद देने की इच्छा की है। क्या आप उसे स्वीकार करेंगे?" अंकमाल को लोभ आ गया, उसने कहा—"हाँ-हाँ अभी चलो।" दोनों श्रमण भी मुसकरा दिए और चुपचाप लौट आए। अंकमाल हैरान था—बात क्या है?

थोड़ी देर पीछे भगवान बुद्ध पुनः उपस्थित हुए। उनके साथ आम्रपाली थी। अंकमाल जितनी देर तथागत वहाँ रहे आम्रपाली की ही ओर बार-बार देखता रहा। बात समाप्त कर तथागत आश्रम लौटे।

सायंकाल अंकमाल को बुद्ध देव ने पुनः बुलाया और पूछा— "वत्स! क्या तुमने क्रोध, काम और लोभ पर विजय की विद्या भी सीखी है?" अंकमाल को दिनभर की सब घटनाएँ याद हो आईं। उसने लज्जा से अपना सिर झुका लिया और उस दिन से आत्मविजय की साधना में संलग्न हो गया।

भगवान सबको देखता है

एक बार एक भला आदमी बेकारी से दुखी था। उसकी यह दशा देखकर एक चोर को सहानुभूति उपजी। उसने कहा—"मेरे साथ चला करो, चोरी में बहुत धन मिला करेगा।" वह बेकार आदमी तैयार हो गया पर उसे चोरी आती न थी। उसने साथी से कहा—"मुझे चोरी आती तो है नहीं करूँगा कैसे?" चोर ने कहा—"इसकी चिंता न करो मैं सब सिखा लूँगा।" दोनों एक किसान का पका हुआ खेत काटने गए। वह खेत गाँव से कुछ दूर जंगल में था। वैसे तो रात में उधर कोई रखवाली नहीं थी। तो भी चोर ने उस नए साथी को खेत की मेंड़ पर खड़ा कर दिया कि वह निगरानी करता रहे कि कोई देखता तो नहीं है। वह खुद खेत काटने लग गया।

नए चोर ने थोड़ी ही देर में आवाज लगाई—"भाई जल्दी उठो, यहाँ से भाग चलो, खेत का मालिक पास ही खड़ा देख रहा है, मैं तो भागता हूँ।" चोर काटना छोड़कर उठ खड़ा हुआ और भागने लगा। कुछ दूर जाकर दोनों खड़े हुए तो चोर ने साथी से पूछा—"मालिक कहाँ था? कैसे देख रहा था?" उसने कहा—"ईश्वर सबका मालिक है। इस संसार में जो कुछ है, उसी का है। वह हर जगह मौजूद है और सब कुछ देखता है।" मेरी आत्मा ने कहा कि ईश्वर यहाँ भी मौजूद है और हमारी चोरी को देख रहा है। ऐसी दशा में हमारा भागना ही उचित था।

पहले चोर पर इसका कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसने हमेशा के लिए चोरी छोड़ दी।

बहुमत का सत्य

एक साधु वर्तमान शासन तंत्र की आलोचना कर रहे थे, तब एक तार्किक ने उनसे पूछा—"कल तो आप संगठन शक्ति की महत्ता बता रहे थे, आज शासन की बुराई, शासन भी तो एक संगठन ही है।" इस पर महात्मा ने एक कहानी सुनाई—

"एक वृक्ष पर उल्लू बैठा था, उसी पर आकर एक हंस भी बैठ गया और स्वाभाविक रूप में बोला—आज सूर्य प्रचंड रूप से चमक रहा है। इससे गरमी तीव्र हो गई है। उल्लू ने कहा—सूर्य कहाँ है? गरमी तो अंधकार बढ़ने से होती है, जो इस समय भी हो रही है। उल्लू की आवाज सुनकर एक बड़े वटवृक्ष पर बैठे अनेक उल्लू वहाँ आकर हंस को मूर्ख बताने लगे और सूर्य के अस्तित्व को स्वीकार न कर हंस पर झपटे। हंस यह कहता हुआ उड़ गया कि यहाँ तुम्हारा बहुमत है, बहुमत में समझदार को सत्य के प्रतिपादन में सफलता मिलना दुष्कर ही है।" तार्किक संगठन और बहुमत के अंतर को समझकर चुप हो गया।

सत्य के लिए क्रूरता का सामना

बगदाद के संत हंबल बंदी बने खलीफा के न्यायालय में खड़े थे। उनका मन बार-बार शासन की क्रूरता के प्रति सोच रहा था। वह बड़े असमंजस में थे, तभी द्वार पर पहरा देने वाले सिपाही ने आकर उनके कान में कहा—"हजरत! आज सच्ची वीरता दिखाने का दिन है और आप असमंजस में पड़े हुए हैं। मुझे आश्चर्य है कि आप पर कुरान का अपमान करने का आरोप लगाया गया है, जबकि आपने सारा जीवन कुरान की शिक्षाओं पर चलने में लगा दिया है। ऐसे महापुरुष की तो पूजा होनी चाहिए थी, जबकि उसके विपरीत कैदी

बनाकर उपस्थित किया गया है। एक बार मैंने चोरी की, तो खलीफा ने एक हजार कोड़े की सजा सुनाई थी। सचमुच मैं चोर था, पर मैं अपनी जिद पर डटा रहा और हजार कोड़ों की मार सहकर भी उस चोरी का रहस्य न खुलने दिया। आखिरकार मुझे छोड़ दिया गया। जब मैं झूठ के लिए अपने कलेजे को इतना मजबूत कर सकता था, तो फिर सत्य बात के लिए आप इतने भयभीत क्यों होते हैं?''

संत के मन पर छाया भय का भूत जाने कहाँ चला गया। उन्हें अंधकार में प्रकाश की एक किरण दिखाई देने लगी। वे बोले— ''सचमुच तुम ठीक ही कहते हो। तुमने समय पर मुझे जगा दिया, इसके लिए सदैव तुम्हारा आभारी रहूँगा।'' और दूसरे ही क्षण संत ने खलीफा के न्यायालय में धर्मांधों के रोष का बहादुरी के साथ सामना करने के लिए अपने को समर्थ पाया।

दूसरे दिन खलीफा द्वारा पूछे गए सारे प्रश्नों का संत ने सही-सही उत्तर दे दिया। वह पहले ही सोच चुके थे कि अधिक से अधिक मृत्युदंड ही तो दिया जा सकता है। खलीफा ने हजार बेंत लगाने का आदेश सुना दिया। उनका शांत चेहरा जैसा था, वैसा ही बना रहा। न्यायालय के बाहर खड़े सैकड़ों व्यक्ति तरह-तरह की बातें कह रहे थे। नौकरों द्वारा कोड़े बरसाए जाने लगे। संत का शरीर चोट खाकर बेहोश हो गया। वह सत्य के लिए मरते दम तक शासन की क्रूरता को सहन करते रहे, पर उस चोर सिपाही के वचन को न भूले।

संगठन-शक्ति

एक पिता के चार पुत्र थे। चारों में प्रायः हमेशा ही झगड़ा बना रहता। इससे उनकी शारीरिक और आर्थिक ही नहीं, मानसिक और बौद्धिक अवनति भी होती जा रही थी। यह देखकर पिता बड़ा दुखी हुआ। पिता ने मरते वक्त अपने पुत्रों को बुलाया और उन्हें एक लकड़ी का गट्ठर दिया और कहा तोड़ो इसे। लड़कों ने भरसक प्रयत्न किया परंतु न तोड़ सके। अंत में उसने कहा—''एक-एक लकड़ी तोड़ो।''

तब वह बड़े आराम से टूटने लगीं। तब पिता ने कहा—"यदि इस प्रकार मिलकर रहोगे तो कोई तुम्हारा कुछ न बिगाड़ सकेगा और यदि फूट रही तो इसी प्रकार जैसे लकड़ियाँ क्षण में ही टूट गईं, नष्ट हो जाओगे।" उस दिन से लड़के मिलकर रहने लगे।

श्रम का अमृत

चलते-चलते शाम हो गई तो गुरु नानक पास के गाँव में एक निर्धन किसान के यहाँ ठहर गए। उस गाँव के सेठ ने यह सुना कि आज रात्रि को गुरु नानक यहीं विश्राम कर रहे हैं तो वह भी उनके दर्शन के लिए गया। उस समय नानक भोजन कर रहे थे।

भोजन में सूखी रोटी और दाल थी। ऐसा रूखा-सूखा भोजन करते नानक को देखा तो उस सेठ को बड़ा बुरा लगा। उसने कहा—"आप ऐसा भोजन क्यों कर रहे हैं? इस गाँव में तो जो भी कोई संत महात्मा आता है वह मेरे यहाँ ही ठहरता है। भगवान की कृपा से मेरे यहाँ किसी भी प्रकार की कमी नहीं है। मेरा आपसे निवेदन है कि आप भी मेरे यहाँ चलकर ही निवास करिए।"

नानक ने बड़ी शांति से उत्तर दिया—"महोदय! मैं तो श्रम की कमाई से उत्पन्न अमृत खा रहा हूँ। निर्धन व्यक्तियों के शोषण से बने पकवान मुझे पसंद नहीं हैं।"

अधिक भोले भी न बनो

दो मित्रों ने ईख की। खेत तैयार होने पर बाँटने की बात चली तो भोले मित्र ने कहा—"तुम्हीं बट कर दो, जो दोगे वही ले लूँगा।" चालाक मित्र ने कहा कि जड़ मैं लेता हूँ तुम ऊपर का भाग ले लो। उसने स्वीकार किया। अतः गन्ने चालाक मित्र ने ले लिए और ऊपर का भाग जिसे अगोला कहते हैं, भोले मित्र के पल्ले पड़ा। संसार में अधिक भोलापन भी हानिप्रद है।

दार्शनिक की विजय

एक दिन देवलोक से एक विशेष विज्ञप्ति निकाली गई। जिसने आकाश, पाताल तथा पृथ्वी तीनों लोकों में हलचल मचा दी। प्रसारण इस प्रकार था—

"अगले सात दिन तक लगातार श्री चित्रगुप्त जी की प्रयोगशाला के मुख्य द्वार पर कोई भी प्राणी असुंदर वस्तु देकर उसके स्थान पर सुंदर वस्तु प्राप्त कर सकेगा। शर्त यही है कि वह विधाता की सत्ता में विश्वास रखता हो। इसकी परीक्षा वहीं कर ली जावेगी।"

बस फिर क्या था, सभी अपनी-अपनी बदलने वाली वस्तुओं की सूची तैयार करने लगे। याद कर-कर के सबों ने अपनी वस्तुओं को लिख लिया जो उन्हें अरुचिकर या असुंदर लगती थीं।

निश्चित तिथि पर देवलोक से कई विमान भेजे गए, जो सुविधापूर्वक सबों को देवलोक पहुँचाने लगे। जब सब लोग वहाँ पहुँच गए तो विधाता ने अपने तीसरे नेत्र की योग दृष्टि से तीनों लोकों का अवलोकन किया कि कोई बचा तो नहीं आने से। उन्होंने पाया कि स्वर्ग तथा पाताल में कोई शेष नहीं रहा, केवल पृथ्वी पर एक मनुष्य आराम से पड़ा अपनी मस्ती में डूबा आनंद मग्न है। पास जाकर उससे पूछा—"तात! तुमने हमारा आदेश नहीं सुना क्या? तुम भी चित्रगुप्त के दरबार में क्यों नहीं चले जाते और अपने पास जो कुरूप, कुरुचिपूर्ण वस्तुएँ हैं, उन्हें बदलकर अच्छी वस्तुएँ ले आते, जानते नहीं कि अच्छाई की वृद्धि से सम्मान बढ़ता है।"

वह व्यक्ति बड़ी ही नम्रता तथा गंभीरता से बोला—"सुना था भगवन्! किंतु मुझे तो आपकी बनाई इस सृष्टि में कुछ भी असुंदर नहीं दीखता। जब सभी कुछ आपका बनाया हुआ है, सब में ही आपकी सत्ता व्याप्त हो रही है तो असुंदरता कहाँ रह सकती हैं वहाँ? मुझे तो इस सृष्टि का कण-कण सुंदर दिखाई देता है, प्रभु! फिर भला मैं किसी को असुंदर कहने का दुस्साहस कैसे कर सकता हूँ?"

बाद में पता चला कि उस कसौटी पर केवल वही मनुष्य खरा उतरा था। बाकी सबको निराश ही लौटना पड़ा था।

यह थी एक दार्शनिक की विश्व-विजय। जो संसार की कुरूप से कुरूप वस्तु में भी सौंदर्य का दर्शन करे वही सच्चा दार्शनिक है।

पंचरत्न

महर्षि कपिल प्रतिदिन गंगा स्नान के लिए जाया करते थे। मार्ग में एक गाँव पड़ता था। कृषक लोग उसमें रहा करते थे। जिस रास्ते से महामुनि जाया करते थे, उसमें एक विधवा ब्राह्मणी की भी झोंपड़ी पड़ती थी। महामुनि जब भी उधर से निकलते विधवा या तो चरखा कातते मिलती या धान कूटते। पूछने पर पता चला कि उसके पति के अतिरिक्त घर में आजीविका चलाने वाला और कोई है नहीं, सारे परिवार का भरण-पोषण उसी को करना पड़ता है।

मुनि कपिल को उसकी इस अवस्था पर बड़ी दया आई। उन्होंने उसके पास जाकर कहा—"भद्रे! मैं इस आश्रम का कुलपति कपिल हूँ। मेरे कई शिष्य राज्य-परिवारों से संबंध रखते हैं, तुम चाहो तो तुम्हारे लिए आजीविका की स्थायी व्यवस्था कराई जा सकती है। तुम्हारी असहाय अवस्था मुझसे देखी नहीं जाती।"

ब्राह्मणी ने आभार व्यक्त करते हुए कहा—"देव! आपकी इस दयालुता के लिए हार्दिक धन्यवाद। किंतु आपने पहचानने में भूल की, न तो मैं असहाय ही हूँ और न ही निर्धन। आपने देखे नहीं, मेरे पास पाँच ऐसे रत्न हैं, जिनसे चाहूँ तो मैं स्वयं राजाओं जैसा जीवन प्राप्त कर सकती हूँ, मैंने उसकी आवश्यकता अनुभव नहीं की, इसलिए वह पाँच रत्न सुरक्षित रखे हैं।"

कपिल बड़े आश्चर्यचकित हुए। उन्होंने पूछा—"भद्रे! अनुचित न समझें तो वह रत्न कृपया मुझे भी दिखाएँ। देखूँ तो तुम्हारे पास कैसे रत्न हैं।"

ब्राह्मणी ने आसन बिछा दिया। बोली—"आप थोड़ी देर बैठें, अभी रत्न दिखाती हूँ।" यह कहकर ब्राह्मणी पुनः चरखा कातने लगी। थोड़ी देर में उसके पाँच बेटे विद्यालय से लौटकर आए। उन्होंने माँ के पैर छूकर कहा—"माँ! हमने आज भी किसी से झूठ नहीं बोला, किसी को कटु वचन नहीं कहा, गुरुदेव ने जो सिखाया और बताया उसे परिश्रमपूर्वक पूरा किया है।"

कपिल मुनि को और कुछ कहने की आवश्यकता नहीं पड़ी, उन्होंने ब्राह्मणी को प्रणाम कर कहा—"भद्रे! सचमुच तुम्हारे पाँच रत्न बहुमूल्य हैं, ऐसे अनुशासित बच्चे जिस घर में, जिस देश में हों, वह कभी अभावग्रस्त नहीं रह सकता।"

सादगी सच्चा आभूषण

लोपामुद्रा ने अपने पति अगस्त्य से कुछ आभूषणों की प्रार्थना की। ऋषि असमंजस में पड़े, पर अपनी पत्नी की कामना पूर्ण करने के लिए उन्होंने अपने शिष्यों के पास जाने में हर्ज न समझा और दूसरे दिन कुछ शिष्यों को साथ लेकर श्रुतर्वा राजा के पास चल दिए।

राजा ने उनका समुचित सत्कार करके पधारने का कारण पूछा तो ऋषि ने अपना अभिप्राय कह सुनाया। साथ ही यह भी कहा कि जो धन धर्मपूर्वक कमाया है और उचित कामों में खरच करने से बचा हो उसी को मैं लूँगा।

श्रुतर्वा ने महर्षि को कोषाध्यक्ष के पास भेज दिया ताकि वे हिसाब जाँच कर देख सकें कि उनका इच्छित धन है या नहीं।

अगस्त्य ने हिसाब जाँचा तो समस्त राज्य-कोष धर्म उपार्जित कमाई का ही पाया पर साथ ही उचित कार्यों का खरच भी इतना रहा कि उसमें बचत कुछ भी न थी। जमा खरच बराबर था।

ऋषि वहाँ से चल दिए और राजा धनस्व के यहाँ पहुँचे और उसी प्रकार अपना अभिप्राय कह सुनाया। उसने भी श्रुतर्वा की तरह हिसाब जाँचने की प्रार्थना की। जाँचा गया तो वहाँ भी संतुलन ही पाया

गया। अगस्त्य वहाँ से भी बिना कुछ लिए ही चल दिए। इसी प्रकार वे अपने कई अन्य धनी समझे जाने वाले शिष्यों के यहाँ गए पर वे सभी धन की पवित्रता पर ध्यान रखने वाले निकले और उनके कोष में बचत कुछ भी न निकली।

अगस्त्य वापस लौट रहे थे कि रास्ते में इल्वण नामक दैत्य मिला। उसने महर्षि का अभिप्राय जाना तो अनुरोधपूर्वक प्रार्थना की कि मेरे पास विपुल संपदा है, आप जितनी चाहें प्रसन्नतापूर्वक ले जा सकते हैं।

ऋषि इल्वण के महल में पहुँचे और हिसाब जाँचना शुरू किया तो वहाँ सभी कुछ अनीति से उपार्जित पाया। उचित कामों में खरच न करने की कंजूसी में से ही वह धन जमा हो सका था। अगस्त्य ने पाप-संचय लेने में पत्नी का अहित ही देखा और वे वहाँ से भी खाली हाथ लौट आए।

प्रतीक्षा में बैठी हुई लोपामुद्रा को सांत्वना देते हुए महर्षि ने कहा—"भद्रे, धर्म से कमाई करने और उदारतापूर्वक उचित खरच करने वालों के पास कुछ बचता नहीं। अनीति से कमाने वाले कृपण लोगों के पास ही धन पाया जाता है, सो उसके लेने से हमारे ऋषि जीवन में बाधा ही पड़ेगी। अपवित्र धन से शोभायमान होने की अपेक्षा तुम्हारे लिए पवित्रता की रक्षा करते हुए अभावग्रस्त रहना ही उचित है।"

लोपामुद्रा ने पति की शिक्षा का औचित्य समझा और शोभा सौंदर्य की कामना छोड़, सादगी के साथ सुखपूर्वक रहने लगी।

जैसा ध्यान-वैसा निर्माण

महाप्रलय की रात्रि का चौथा चरण—प्रजापति ब्रह्मा की निद्रा टूटी। परमेश्वर का स्मरण कर पुनः सृष्टि रचना की इच्छा से उन्होंने शैया-त्याग की और बाहर आए तो देखा कि सृष्टि तो पहले से ही तैयार है।

"जिस सृष्टि की रचना की बात मेरे मन में आ रही थी, वह तो पहले से ही तैयार है।" यह सोचकर ब्रह्मा को बड़ा विस्मय हुआ,

उनने सूर्य भगवान से प्रश्न किया—"देव! मैं यह क्या देख रहा हूँ, सृष्टि निर्माण की क्षमता और अधिकार तो केवल मुझ प्रजापति को ही है, फिर यह सृष्टि किसने रचकर तैयार कर दी?"

जगदात्मा सविता देवता हँसे और बोले—"महापुरुष! यह तो आपने एक ओर ही देखा। अभी आप आग्नेय, दक्षिण नैऋत्य, पश्चिम, वायव्य, उत्तर, ईशान ऊर्ध्व और अध:दिशाओं की ओर भी तो दृष्टिपात करें।"

प्रजापति ने दशों दिशाओं की ओर घूमकर देखा तो उन्हें सर्वत्र एक-एक सृष्टि के दर्शन हुए। इससे उनका असमंजस और भी गहरा होता गया! विस्मित ब्रह्मा ने कहा—"भगवन्! अब और अधिक पहेली मत बुझाइए। कृपया यह बताइए कि ये सब सृष्टियाँ रचीं किसने? मुझ जैसी क्षमता किसी में आई तो कैसे आई?"

सूर्य भगवान ने बताया—"प्रजापति! आपकी पूर्व रचित सृष्टि में इंदु नामक एक ब्राह्मण के बहुत समय तक कोई संतान न हुई, तब उसने भगवान शिव की पूजा की। शिव ने प्रसन्न होकर उन्हें दस पुत्रों का वरदान दिया। समय पाकर इंदु के दस पुत्र उत्पन्न हुए। उनकी शिक्षा-दीक्षा संपन्न हुई ही थी कि एक दिन ब्राह्मण इंदु की मृत्यु हो गई। पुत्रों ने सोचा कोई ऐसा काम करना चाहिए, जिससे हमारे पिता की कीर्ति अमर हो जाए। उन सबने निर्णय किया कि आज तक किसी मनुष्य ने सृष्टि नहीं रची सो हम दसों को दस ब्रह्मा बनकर अपने पिता की स्मृति में दस सृष्टियों की रचना करनी चाहिए। इस निर्णय के साथ ही वह आपका ध्यान करने बैठ गए। कुछ ही दिन में आपका ध्यान करते-करते उनका संकल्प पक गया तो उनमें भी आपकी सी शक्ति आ गई और उसके आगे का चमत्कार आप देख ही रहे हैं।"

इतनी कथा सुनाने के बाद महर्षि वशिष्ठ ने कहा—"हे राम! मंत्र के साथ ध्यान का यही विज्ञान है। मनुष्य जिसका भी दृढ़ता से ध्यान करता है, वैसी ही शक्ति वाला बन जाता है।"

सत्संकल्प अधूरे नहीं रहते

शीमक कठिन शीत ज्वर से पीड़ित हैं, उनके पुत्र-पौत्रों ने उपचार की अच्छी व्यवस्था की है तो भी वे औषधि नाममात्र को ही ले रहे हैं, उनका कथन है कि औषधि का काम विष के प्रभाव को रोकना भर है, रोग को नष्ट करना नहीं, वह काम तो प्रकृति स्वयं ही करती है। तब हम उसमें हस्तक्षेप क्यों करें? पर उनके इस कथन का भी वही अर्थ लगाया गया जो अब तक लगाया जाता रहा था अर्थात शीमक बड़ा कृपण है। घर में अथाह धनराशि होते हुए भी वह न तो अच्छा खा सकता है, न अच्छा पहन सकता है, बाल-बच्चों को देना तो दूर, अब जब उसका अपना ही जीवन संकट में पड़ गया, तब भी पैसे का इतना मोह—छि: शीमक की कृपणता कलंक नहीं तो और क्या है?

बहुत बार तो शीमक को कई ऐसे व्यक्ति भी मिले थे, जो उसके मुख पर ही कह गए थे—"शीमक इतनी कृपणता तो न किया करो, कभी कुछ दान, कभी कुछ पुण्य, तीर्थ-यात्रा, ब्राह्मण भोज, नगर भोज कुछ तो ऐसा कर डालो, जिससे यह धन ठिकाने लग जाए। मर गए तब वह धन किसी और के हाथ लग गया तो तुम्हारी इस कमाई का क्या लाभ?"

शीमक हँस पड़ते और अच्छा! अच्छा!! कहकर उस प्रसंग को टाल देते । ऐसे अवसर आते तो दूर दृष्टि डालते हुए शीमक की मुख-मुद्रा देखने से प्रतीत होता था, मानों वे सुदूर भविष्य में कुछ खोजना चाहते हैं, यह आज तक उनके पुत्र परिजन भी नहीं समझ सके थे।

आज जितने चिंतित शीमक बैठे थे, उससे अधिक विकल आचार्य महीधर दिखाई दे रहे थे। उन्होंने बड़े परिश्रम के साथ वेदों का भाष्य किया था। भाष्य भी ऐसा कि जो भी विद्वान उसे पढ़ता धन्य हो जाता, किंतु धन के अभाव के कारण आज स्वयं महीधर इतने निराश हो गए थे कि उन्हें अपना इतना सारा तप ही निरर्थक लगने लगा था। वे चाहते थे कि वेदों का यह भाष्य घर-घर पहुँचे ताकि बौद्धों के

प्रभाव को रोका जा सके पर उनकी आकांक्षा, आकांक्षा ही रही। कोई उपाय बन नहीं सका।

शीमक ने समाचार सुना तो चुपचाप घर से निकल पड़ा। कहाँ गया शीमक, कई दिन तक खोज की गई पता न चला। बहुत दिन बाद जब महीधर के वेद-भाष्य घर-घर पहुँचने लगे, तब लोगों ने इतना भर सुना कि कोई एक देवपुरुष उनके पास आया था और उसने अपनी सारी संपत्ति उन्हें देकर कहा था—"आचार्य प्रवर! सदिच्छाएँ धन के अभाव में रुकती नहीं, यह रही मेरी जीवनभर की कमाई, इसे काम में लेकर मेरा जीवन धन्य करें।"

उसके बाद फिर उस महापुरुष के कभी दर्शन नहीं हुए। कहते हैं, वह वानप्रस्थ ग्रहण कर अंतिम साधना के लिए अंतेवासी हो गया था।

धन यहाँ न सही कहीं और सही

एक व्यक्ति के पास बहुत धन था, पर स्वभाव से वह था कंजूस। न स्वयं खा-पी सके और न किसी को दे ही सके। घर में अपने धन को इसलिए नहीं रखता था कि कोई चोर-डाकू न चुरा ले। अतः गाँव के बाहर एक जंगल में गड्ढा करके अपना सारा धन गाड़ आया। दूसरे-तीसरे दिन जाता और उस स्थान को चुपचाप देख आता। उसे अपने पर बड़ा गर्व था।

एक बार एक चोर को शक हुआ, वह कंजूस के पीछे-पीछे चुपचाप गया और छिपकर देख आया। उसे समझते देर न लगी कि इस स्थान पर अवश्य कोई मूल्यवान वस्तु दबी है। जब कंजूस चक्कर लगाकर घर चला आया तो उस चोर ने खुदाई करके सारा धन प्राप्त कर लिया और वहाँ से रफूचक्कर हो गया।

दूसरे दिन जब वह कंजूस फिर अपने छिपे धन को देखने गया तो उसे जमीन खुदी हुई दिखाई दी। आस-पास मिट्टी का ढेर लग रहा था और बीच में एक खाली गड्ढा था। उसका सारा धन जा चुका था। इतनी बड़ी हानि वह सहन नहीं कर सका। माथा पकड़कर जोर से

रोने-चिल्लाने लगा—"हाय मैं तो लुट गया, मेरे सारे जीवन की कमाई चोर ले गए।"

रोना-चिल्लाना सुनकर जंगल में रहने वाले आस-पास के कई आदमी आ गए। उन्होंने पूछकर सारी स्थिति जानी। एक आदमी ने समझाते हुए कहा—"सेठ जी! धन तो आपके काम पहले भी न आया था और न आपके जीवन में आ सकता था। हाँ, उस पर आपका अधिकार अवश्य था और उसे यहाँ छिपाकर रख छोड़ा था। अब यदि यहाँ से कहीं और जगह चला गया तो आपकी कौन सी हानि हो गई, क्योंकि आपके लिए तो वह बेकार ही था। ऐसी स्थिति में दुखी होने की क्या आवश्यकता है।"

स्वर्ग क्या है नरक क्या है?

स्वर्ग और नरक करनी के फल हैं, एक संत ने अपने शिष्य को समझाया पर शिष्य की समझ में बात चढ़ी नहीं। तब उसका उत्तर देने के लिए अगले दिन संत शिष्य को लेकर एक बहेलिए के पास पहुँचे। वहाँ जाकर देखा कि व्याध कुछ जंगल के निरीह पक्षी पकड़कर लाया था, वह उन्हें काट रहा था, उसे देखते ही शिष्य चिल्लाया—"महाराज! यहाँ तो नरक है, यहाँ से शीघ्र चलिए।"

संत बोले—"सचमुच इस बहेलिए ने इतने जीव मार डाले पर आज तक फूटी कौड़ी इससे न जुड़ी, न जुड़ेगी। कपड़ों तक के पैसे नहीं, इसके लिए यह संसार भी नरक है और परलोक में तो इतने मारे गए जीवों की तड़पती आत्माएँ इसे कष्ट देंगी, उसकी तो कल्पना भी नहीं हो सकती।"

संत दूसरे दिन एक साधु की कुटी पर पधारे। शिष्य भी साथ थे, वहाँ जाकर देखा, साधु के पास है तो कुछ नहीं पर उनकी मस्ती का कुछ ठिकाना नहीं, बड़े संतुष्ट, बड़े प्रसन्न दिखाई दे रहे थे। संत ने कहा—"वत्स! यह साधु इस जीवन में कष्ट का, तपश्चर्या का जीवन जी रहे हैं तो भी मन में इतना आह्लाद—यह इस बात का प्रतीक है कि इन्हें पारलौकिक सुख तो निश्चय ही है।"

सायंकाल संत एक वेश्या के घर में प्रवेश करने लगे तो शिष्य चिल्लाया—"महाराज! यहाँ कहाँ?" संत बोले—"वत्स! यहाँ का वैभव भी देख लें। मनुष्य इस सांसारिक सुखोपभोग के लिए अपने शरीर, शील और चरित्र को भी जिस तरह बेचकर मौज उड़ाता है, पर शरीर का सौंदर्य नष्ट होते ही कोई पास नहीं आता, यह इस बात का प्रतीक है कि इसके लिए यह संसार स्वर्ग की तरह है पर अंत इसका वही है, जो इस बहेलिए का था।"

अंतिम दिन वे एक सद्गृहस्थ के घर रुके। गृहस्थ बड़ा परिश्रमी, संयमशील, नेक और ईमानदार था, सो सुख-समृद्धि की उसे कोई कमी नहीं थी, वरन वह बढ़ ही रही थी। संत ने कहा—"यह वह व्यक्ति है, जिसे इस पृथ्वी पर भी स्वर्ग है और परलोक में भी।"

शिष्य ने इस तत्त्व-ज्ञान को भली प्रकार समझ लिया कि स्वर्ग और नरक वस्तुतः करनी का फल है।

बीमारियों का निवास

तब बीमारियाँ एक पहाड़ पर रहा करती थीं। पर्वत उन्हें अपनी पुत्री की तरह पालता-पोसता। बीमारियाँ उसका अनुग्रह मानतीं और कोई भी उपकार करने की इच्छुक बनी रहतीं, पर पहाड़ को उनकी सेवाओं की आवश्यकता भी तो नहीं थी।

कुछ दिन बीते। एक किसान को कृषि-योग्य भूमि की कुछ कमी पड़ी। और कहीं जमीन थी नहीं, अलबत्ता वह पहाड़ ही बहुत सारी जमीन दबाए खड़ा था। यह देखकर परिश्रमी किसान पहाड़ काटने और उसे चौरस बनाने में जुट गया।

किसान ने बहुत सी भूमि कृषि योग्य कर ली। यह देखकर दूसरे किसान भी जुट पड़े। किसानों की संख्या देखते-देखते सैकड़ों तक जा पहुँची। इस तरह निरंतर काया कटते देखकर पहाड़ घबराया और अपने बचाव के उपाय खोजने लगा।

और कुछ तो समझ में नहीं आया—हाँ, उसे अपने कोटर में पल रही बीमारियों की याद अवश्य आ गई। सो उसने सब बीमारियों को इकट्ठा किया और पूछा—"क्या आप लोग हमारे उपकार चुकाएँगी?" बीमारियाँ तो पहले ही कह चुकी थीं। उन्होंने कहा—"आप सहर्ष आदेश दें, हम आपकी क्या सेवा कर सकती हैं?"

पहाड़ ने फावड़े और कुदाल चलाते हुए किसानों की ओर संकेत किया और कहा—"पुत्रियो! देखो यह रहे मेरे शत्रु, मुझे काटकर जर्जर किए दे रहे हैं। तुम सब की सब इन पर झपट पड़ो और मेरा नाश करने वालों का सत्यानाश कर डालो।"

अपने-अपने आयुध लेकर बीमारियाँ आगे बढ़ीं और किसानों के शरीर से लिपट गईं। पर किसान तो अपनी धुन में लगे थे। फावड़े जितना तेजी से चलाते, पसीना उतना ही अधिक निकलता और सारी बीमारियाँ धुलकर नीचे गिर जातीं। बहुत उपक्रम किया, पर बीमारियों की एक न चली। एक अच्छा स्थान छोड़कर उन्हें गंद-वासिनी बनना पड़ा सो अलग।

पहाड़ ने जब देखा कि बीमारियाँ उसकी रक्षा नहीं कर सकीं, तो वह बड़ा कुपित हुआ और शाप दिया—"मैंने तुम्हें पुत्रियों की तरह पाला फिर भी तुम मेरा थोड़ा सा काम भी न कर सकीं। अब तुम जहाँ हो वहीं पड़ी रहो।"

तब से बीमारियाँ हमेशा गंदगी में प्रश्रय पाती हैं और मेहनत-कस अनपढ़ हों तो भी स्वस्थ जीवन जीते हैं—यही नियम अब तक चला आ रहा है।

मन नहीं लगता

नव-दीक्षित शिष्य ने कहा—"गुरुदेव! उपासना में मन नहीं लगता। भगवान की ओर चित्त दृढ़ नहीं होता।"

गुरु ने गंभीर दृष्टि डालकर शिष्य को देखा और जैसे कोई बात समझ में आ गई हो, बोले—"सच ही कहते हो वत्स! यहाँ ध्यान

लगेगा भी नहीं। अन्यत्र चलकर साधना करेंगे, वहाँ ध्यान लगेगा। आज सायंकाल ही यहाँ से प्रस्थान करेंगे।"

'सायंकाल!' शिष्य कुछ चिंतित स्वर में प्रश्न कर बैठा, जिसका गुरु ने कोई उत्तर न दिया। सूर्यास्त के साथ ही वे दोनों एक ओर चल पड़े। गुरु के हाथ में मात्र एक कमंडल था, शिष्य के हाथ में थी एक झोली जिसे वह बहुत यत्नपूर्वक सँभाले हुए चल रहा था।

मार्ग में एक कुआँ आया। शिष्य ने शौच की आशंका व्यक्त की। दोनों रुक गए। बहुत सावधानी से उसने झोला गुरु के पास रखा और शौच के लिए चल दिया। जाते-जाते उसने कई बार झोले की ओर दृष्टि डाली।

'गड़ाम!' एक तीव्र प्रतिध्वनि भर सुनाई दी और झोले में पड़ी कोई वस्तु कुएँ में जा समाई। शिष्य दौड़ा हुआ आया और चिंतित स्वर में बोला—"भगवन्! झोले में सोने की ईंट थी सो क्या हुई?"

कुएँ में चली गई, अब कहें तो चलें, कहें तो फिर वहीं लौट चलें जहाँ से आए हैं, अब ध्यान न लगने की चिंता कहीं न रहेगी।

एक दीर्घ श्वास छोड़ते हुए शिष्य ने कहा—"सच ही गुरुदेव! आसक्ति का मन से परित्याग किए बिना कोई भी ईश्वर में मन नहीं लगा सकता।"

दीपक जलाओ, प्रकाश फैलाओ

सायंकाल होती तो घर के सब काम-काज ठप पड़ जाते। आग का 'अकाड़ा' जलाकर सब बैठते और अंधकार को मनमाना कोसते। कोई कहता भगवान को भी लगता है, बुद्धि नहीं थी, अंधकार बनाकर रख दिया, तो कोई कहता, इस अंधकार में तो दम घुटता है, भगवान ने हमारे साथ बड़ा अत्याचार किया। यह क्रम वर्षों चलता रहा पर उस परिवार के लोगों को अंधकार से बचने का उपाय न सूझा।

बड़े बेटे का हुआ विवाह तब आई बहू। घर के सदस्यों में एक की वृद्धि हुई। पर यह छोटी सी वृद्धि भी बहुत बड़ी थी, क्योंकि बहू पढ़ी-लिखी और समझदार थी।

पहला दिन पहली साँझ। उसके पति ने कहा—"घर में इतना अंधकार है प्रिये! तुम्हारा स्वागत कैसे करें। इस दुष्ट अंधकार को भगवान न बनाता तो उसका क्या बिगड़ जाता।"

पति के भोलेपन पर पत्नी को हँसी आ गई। उसने कहा—"मेरे देवता! अंधकार कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं, प्रकाश के न होने का ही दूसरा नाम अंधकार है।" पति था अनपढ़ उसे तब भी कुछ समझ में नहीं आया।

फिर तो बहू उठी और एक दीपक लाई। उसमें घर में से तेल डाला फिर थोड़ी रूई लाई। बत्ती बनाकर दिये में डाली और फिर उसे आग से जला दिया। वर्षों से घिरा घर का ढेर सारा अंधकार पल भर में सिमट कर न जाने कहाँ अस्त हो गया। घर के सब लोग हर्षातिरेक से झूम उठे, सबने बहू की आरती उतारी और उसका दही मिसरी से स्वागत किया।

आज का संसार ही अँधेरे में भटकते लोग हैं, उन्हें कोसने वाले वे लोग हैं, जो आज समाज के नेता हैं, बहू उन जाग्रत आत्माओं का प्रतीक है, जो संसार की वस्तुस्थिति को समझते हैं। अभी तक ऐसे प्रबुद्ध व्यक्तियों का समाज से विवाह नहीं हुआ, जब आज के विचारशील लोग समाज से विवाह कर लेंगे अर्थात अंधकार में भटकते हुए लोगों को प्रकाश देने की ठान लेंगे तो फिर अंधकार का ठहरना कठिन हो जाएगा।

संकल्प की सुगंध

भिशक अनंगपाल के लिए यह कोई नई बात नहीं थी। वे जिस जल से स्नान करते थे, उसमें तो प्रत्येक ही दिन कोई न कोई इत्र, चंदन, अगरु, केवड़ा या गुलाब की सुवास मिलाई जाती थी पर जो मादकता और मधुरता आज के जल में थी, वह कभी भी नहीं मिली थी।

विस्मित महाराज भिशक अनंगपाल ने परिचारिका को बुलाया और पूछा—"आज जल-कलश में कौन सी सुवास मिलाई गई है।" परिचारिका किसी अज्ञात भय से स्तब्ध हो गई। उसने कहा—"क्षमा करें, महाराज! आज एक नई परिचारिका, जो कल ही नियुक्त की

गई है, ने स्नान का प्रबंध किया था, आज्ञा हो तो सेवा में उसे ही उपस्थित करूँ।"

महाराज भिशक अनंगपाल ने उस दूसरी परिचारिका को बुलाकर पूछा तो वह सहास बोली—"महाराज! उस जल में तो कुछ भी नहीं मिलाया गया। हाँ, वह जल मैं स्वयं ही अपने साथ अपने मायके से लाई थी।"

मायके से। महाराज की उत्सुकता और भी बढ़ी, उन्होंने पूछा— "बताओ परिचारिके तुम्हारा पितृगृह कहाँ है, क्या यह जल किसी कुएँ का है या पद्म पुष्पित किसी सरोवर का?"

नहीं, नहीं महाराज! ऐसे किसी स्थान का जल नहीं था वह। मेरा घर गंधमादन पर्वत की तलहटी पर है और यह जल जो मैं अपने साथ लाई...।

"वह तुम्हारे पिता का तैयार किया हुआ है भद्रे! अच्छा यह तो बताओ, तुम्हारे पिता गंधी तो नहीं हैं" महाराज ने बीच काटते हुए पूछा। परिचारिका बोली—"महाराज! यह जल मेरे पिता का तैयार किया हुआ नहीं है। मेरे ग्राम के समीप एक आश्रम है। वहाँ एक योगी रहते हैं। आश्रम के समीप ही एक कुंड है, जो वर्षभर जल से भरा रहता है, यह जल उसी कुंड का है। मैं उसे विशेष रूप से आपके लिए ही लाई थी।"

भिशक अनंगपाल की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। नव-परिचारिका को पर्याप्त पारितोषिक दे वे उस आश्रम की ओर चल पड़े। दो दिन की अनवरत यात्रा के बाद सब लोग उस आश्रम में जा पहुँचे। महाराज ने वहाँ पहुँचते ही अनुभव किया कि यहाँ की तो प्रत्येक वस्तु उसी सुगंध से परिपूर्ण दिखाई देती है। महाराज बड़े आश्चर्यचकित हुए। सत्वर ही योगी को प्रणाम कर उन्होंने पूछा—"महात्मन्! आपके आश्रम में यह भीनी-भीनी सुगंध कहाँ से आ रही है?"

योगी ने हँसकर कहा—"महाराज! एक वृक्ष यहाँ से सौ योजन दूरी पर इसी पर्वत पर है, मैं सदैव उसका ध्यान करता रहता हूँ, आश्रम उसी की सुगंध से अहर्निश गूँजा करता है।"

केवल स्मरण मात्र से ऐसा होना बड़ी कठिन बात है महात्मन्! आप समझ भी नहीं सकते, यह सब संकल्प का चमत्कार है। संकल्प-बल से व्यक्ति अपने जीवन को नहीं, प्रत्युत अपने वातावरण को भी जैसा चाहें, वैसा ही बना सकते हैं, महाराज! महाराज को वह पुष्प तो नहीं मिल सका पर जो तत्त्व-ज्ञान लेकर लौटे वह उससे भी महत्त्वपूर्ण था।

आसक्ति ही बंधन

काकभुशुंडि जी के मन में एक बार यह जानने की इच्छा हुई कि क्या संसार में ऐसा भी कोई दीर्घजीवी व्यक्ति है, जो विद्वान भी हो पर उसे आत्मज्ञान न हुआ हो? इस बात का पता लगाने के लिए महर्षि वशिष्ठ से आज्ञा लेकर निकल पड़े।

ग्राम ढूँढ़ा, नगर ढूँढ़े, वन और कंदराओं की खाक छानी तब कहीं जाकर विद्याधर नामक ब्राह्मण से भेंट हुई, पूछने पर मालूम हुआ कि उनकी आयु चार कल्प की हो चुकी है और उन्होंने वेद शास्त्र का परिपूर्ण अध्ययन किया है। शास्त्रों के श्लोक उन्हें ऐसे कंठस्थ थे, जैसे तोते को राम नाम। किसी भी शंका का समाधान वे मजे से कर देते थे।

काकभुशुंडि जी को उनसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई, किंतु उन्हें बड़ा आश्चर्य यह था कि इतने विद्वान होने पर भी विद्याधर को लोग आत्मज्ञानी क्यों नहीं कहते।

यह जानने के लिए काकभुशुंडि जी चुपचाप विद्याधर के पीछे घूमने लगे। विद्याधर एक दिन नीलगिरि पर्वत पर वन-विहार का आनंद ले रहे थे, तभी उन्हें कण्वद की राजकन्या आती दिखाई दी, नारी के सौंदर्य से विमोहित विद्याधर प्रकृति के उन्मुक्त आनंद को भूल गए, कामावेश ने उन्हें इस तरह दीन कर दिया जैसे मणिहीन सर्प। वे राजकन्या के पीछे इस तरह चल पड़े जैसे मृत पशु की हड्डियाँ चाटने के लिए कुत्ता। उस समय उन्हें न शास्त्र का ज्ञान रहा, न पुराण का। राजकन्या की उपेक्षा से भी उन्हें बोध नहीं हुआ। वे उसके पीछे लगे

चले गए, सिपाहियों ने समझा यह कोई विक्षिप्त व्यक्ति है इसलिए उन्हें पकड़ कर बंदीगृह में डाल दिया।

कारागृह में पड़े विद्याधर से काकभुशुंडि ने पूछा—"मुनिवर! आप इतने विद्वान होकर भी यह नहीं समझ सके कि आसक्ति ही आत्मज्ञान का बंधन है। यदि आप कामासक्त न होते तो आज यह दुर्दशा क्यों होती।"

यह सुनते ही विद्याधर के ज्ञान के नेत्र खुल गए और उन्हें आत्मज्ञान हो गया।

विवेक ही बड़ा है

एक बार हनुमान जी की भेंट अर्जुन से हुई। हनुमान राम के भक्त थे, अर्जुन श्रीकृष्ण के। दोनों में बहस छिड़ गई। हनुमान जी कहने लगे राम बली हैं, अर्जुन कहते श्रीकृष्ण बली हैं।

बहस का अंत न होते देख परीक्षा करने का निश्चय हुआ और शर्त तय हुई कि जो हारे वह आत्महत्या कर ले।

अर्जुन ने श्रीकृष्ण का ध्यान किया और तुरंत समुद्र में एक विशाल पुल बाँध दिया और हनुमान जी से बोले—"अब यदि तुम्हारे राम बली हैं तो इस पुल को तोड़ दो। यदि न तोड़ सके तो राम का पराक्रम घटिया माना जाएगा।"

हनुमान जी जोश में भर गए। उन्होंने शरीर का शतयोजन विस्तार किया और पुल पर कूद पड़े। भक्तों के इस झगड़े का पता भगवान को हुआ तो वे बहुत चिंतित हुए। यदि हनुमान की रक्षा करते हैं तो अर्जुन का अंत होता है। अर्जुन जीतते हैं तो हनुमान की मृत्यु निश्चित है। सोच-विचार कर उन्होंने स्वयं ही अपना शरीर पुल के नीचे लगा दिया। हनुमान जी ने जैसे ही अपना कदम बढ़ाया कि उनके भार से भगवान का शरीर फट गया और खून बहने लगा। हनुमान जी ने राम को पहचाना, वे कूद कर उनके पास पहुँचे और दुःख करने लगे। अर्जुन ने कृष्ण रूपी भगवान को पहचाना वे भी दौड़ कर विलाप करने लगे। भगवान ने समझाया—

"अच्छा होता आप लोग विवेक से काम लेते । मैं एक हूँ, मेरे ही अनेक रूप संसार में फैले हैं। इसलिए किसी से झगड़ा नहीं करना चाहिए। कोई विवाद आए तो उसे विवेक से हल कर लेना चाहिए।"

जो सिर काटे आपना

ज्ञानप्राप्ति के लिए अति उत्सुक एक भक्त के आग्रह से एक दिन कबीर ने कहा—"वत्स, पैर के नीचे की शिला को उठा।" शिष्य ने तुरंत शिला उठाई। दोनों भीतर घुसे। अंदर एक दरवाजे पर लिखा था—'अपने कान काटने वाला इस दरवाजे को खोल सकेगा'।

कबीर ने अपने दोनों कान काट डाले। वह दरवाजा खुला और कबीर अंदर गए और पुनः दरवाजा बंद हो गया। भक्त ने खोलने का प्रयत्न किया तो अंदर से आवाज आई कि मैंने जैसा किया वैसा करने पर ही द्वार खुलेगा। भक्त भी कान काटकर अंदर गया। दूसरे दरवाजे पर इसी प्रकार लिखा था। कबीर नाक काटकर अंदर घुस गए। भक्त ने भी अनुसरण किया और वह अंदर दाखिल हुआ। तीसरे पर लिखा था—'जिसको अंदर आना हो वह पहले अपना सिर काटे'। कबीर तो सिर उड़ा कर अंदर चले गए पर भक्त बाहर ही रहा। नाक, कान और मस्तक जाने के बाद क्या उपयोग? वह इसी विचार में डूबा हुआ था कि उसे नींद आ गई।

जब नींद खुली तो वहाँ दूर से कबीर आते दिखाई दिए। "क्या मेरी राह देख रहे हो"—कबीर ने पूछा। "मैं तो कुछ समझ ही नहीं सका, गुरुदेव!" यह रहस्य सरलता से समझ में आने लायक नहीं है। तो क्या गुरुदेव मेरे नाक-कान अब सदा के लिए गए?

'वे तो गए ही, इसमें क्या संदेह?'

'पर भगवान! आपके तो कान-नाक पूर्ववत हो गए हैं। मेरे भी पूर्ववत कीजिए न प्रभू!'

'यह कैसे हो सकता है ? सिर काटा होता तो सब अंग मेरे समान पूर्ववत हो जाते।'

मोक्ष के सम्मुख राज्य तुच्छ

राजा विक्रमादित्य के राज्य में एक सदाचारी संतोषी ब्राह्मण रहता था। वह निर्धन था। स्त्री की प्रेरणा से धन प्राप्ति के निमित्त घर से निकला तो जंगल में एक महात्मा से भेंट हुई। उन्होंने उसे चिंतित देख आश्वासन दिया और विक्रमादित्य को पत्र लिखा कि तुम्हारी इच्छा पूर्ति का अब समय आ गया है। अपना राज्य इस ब्राह्मण को देकर यहाँ चले आओ।

वह पत्र विक्रमादित्य ने पढ़ा तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई और ब्राह्मण को राज्य सौंपने की तैयारी की। ब्राह्मण ने राजा को राज्य-त्याग के लिए इतना उत्सुक और अत्यंत आनंदविभोर देखा तो सोचने लगा कि जब राजा ही राज्य सुख को लात मारकर योगी के पास जाने में विशेष आनंद अनुभव कर रहे हैं तो योगी के पास अवश्य ही कोई राज्य से भी बड़ा सुख है। अतः उसने राजा से कहा—"महाराज! मैं अभी महात्मा जी के पास पुनः जा रहा हूँ लौटकर राज्य लूँगा।" यह कहकर योगी के पास पहुँचकर बोला—"भगवन्! राजा तो राज्य त्याग कर आपके पास आने के लिए नितांत उतावला और हर्षविभोर हो गया इससे जान पड़ता है कि आपके पास राज्य से भी बड़ी कोई वस्तु है, मुझे वही दीजिए।"

महात्मा ने प्रसन्न हो उसे पूर्ण योगक्रिया सिखाई और ब्राह्मण पूर्ण तपस्वी होकर मोक्ष सुख पा गया। मोक्ष से राज्य सुख नितांत तुच्छ है।

ईश्वरप्राप्ति का अधिकार

गुरुकुल का प्रवेशोत्सव समाप्त हो चुका था, कक्षाएँ नियमित रूप से चलने लगी थीं। योग और अध्यात्म पर कुलपति स्कंधदेव के प्रवचन सुनकर विद्यार्थी बड़ा संतोष और उल्लास अनुभव करते थे।

एक दिन प्रश्नोत्तर-काल में शिष्य कौस्तुभ ने प्रश्न किया— "गुरुदेव! क्या ईश्वर इसी जीवन में प्राप्त किया जा सकता है?"

स्कंधदेव एक क्षण चुप रहे। कुछ विचार किया और बोले— "इस प्रश्न का उत्तर तुम्हें कल मिलेगा और हाँ आज सायंकाल तुम सब लोग निद्रादेवी की गोद में जाने से पूर्व १०८ बार वासुदेव मंत्र का जप करना और प्रातःकाल उसकी सूचना मुझे देना।"

प्रातःकाल के प्रवचन का समय आया। सब विद्यार्थी अनुशासनबद्ध होकर आ बैठे। कुलपति ने अपना प्रवचन प्रारंभ करने से पूर्व पूछा— "तुममें से किस-किस ने कल सायंकाल सोने से पूर्व कितने-कितने मंत्रों का उच्चारण किया।" सब विद्यार्थियों ने अपने-अपने हाथ उठा दिए। किसी ने भी भूल नहीं की थी। सबने १०८-१०८ मंत्रों का जप और भगवान का ध्यान कर लिया था।

किंतु ऐसा जान पड़ा कि स्कंधदेव का हृदय क्षुब्ध है, वे संतुष्ट नहीं हुए। उन्होंने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। कौस्तुभ नहीं था, उसे बुलाया गया। स्कंधदेव ने अस्त-व्यस्त कौस्तुभ के आते ही प्रश्न किया—"कौस्तुभ! क्या तुमने भी १०८ मंत्रों का उच्चारण सोने से पूर्व किया था।"

कौस्तुभ ने नेत्र झुका लिए, विनीत वाणी और सौम्य मुद्रा। उसने बताया—"गुरुदेव अपराध क्षमा करें, मैंने बहुत प्रयत्न किया किंतु जब जप की संख्या गिनने में चित्त चला जाता तो भगवान का ध्यान नहीं रहता था और जब भगवान का ध्यान करता तो गिनती भूल जाता। रात ऐसे ही गई और वह व्रत पूर्ण न कर सका।"

स्कंधदेव मुसकराए और बोले—"बालको! कल के प्रश्न का यही उत्तर है। जब संसार के सुख, संपत्ति भोग की गिनती में लग जाते हैं तो भगवान का प्रेम भूल जाता है। उसे तो कोई भी पा सकता है, बाह्य कर्मकांड से चित्त हटाकर उसे कोई भी प्राप्त कर सकता है।"

आत्मज्ञान की प्राप्ति

महेंद्र पर्वत पर गंगा के सुरम्य तट पर दीर्घतपस नाम के एक ब्राह्मण अपनी धर्मपत्नी सहित निवास करते थे। दीर्घतपस स्वाध्यायशील, धार्मिक और ईश्वरपरायण महात्मा थे, उनकी धर्मपत्नी भी सुशील स्त्री थी। समय पाकर उनके उन्हीं के गुणों वाले दो पुत्र जन्मे। बड़े का नाम पुण्य और छोटे का नाम पावन रखा गया।

पुण्य बड़ा तपस्वी था। थोड़े ही समय में उसने आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया। अब उसे संसार से किसी प्रकार का न राग था न द्वेष, मोह न आसक्ति; वह निष्काम भावना से सांसारिक कर्त्तव्यों का पालन करता।

पावन शिक्षित था सुशील था, किंतु उसे आत्मबोध न हुआ। एक दिन दीर्घतपस का देहांत हो गया, उससे पुण्य को दुःख न हुआ पर पावन ने कई दिन पिता की स्मृति में रो-रो कर बिताए। समय का संयोग कुछ दिन में ही माता का भी देहावसान हो गया। तब तो पावन पर एक तरह से वज्रपात ही हो गया। मारे दुःख के उसने कई दिन तक अन्न भी ग्रहण नहीं किया। पुण्य ही ऐसा था जिसे न तो पिता की मृत्यु का दुःख हुआ और न माता के निधन का। उसने दोनों का मृतक संस्कार और श्राद्ध तर्पण शास्त्रीय विधान से संपन्न किया।

काफी समय बीत जाने पर भी पावन का शोक जब समाप्त न हुआ तो एक दिन पुण्य ने उसे समीप बुलाकर समझाया—"तात! हमारे माता-पिता ने इस लोक में धर्म और पुण्य का पर्याप्त अर्जन किया, सो वे जीवन मुक्त हो गए। शरीर तो वस्त्र की तरह है, आत्मा अनेक शरीर बदलती रहती है, उसके लिए दुःख किस बात का।" इतना समझाने पर भी पावन को बोध न हुआ तो पुण्य ने योग-दृष्टि से उसे उसके कई जन्मों का हाल दिखाया। वही पावन दशार्णव देश में वानर, तुषार में राजपुत्र, त्रिगर्त देश में गधा और शाल में वन पक्षी के रूप में जन्मा था। सौ जन्मों में अनेक योनियों का विवरण देखकर पावन का मोह छूटा और तब उसे आत्मज्ञान की प्राप्ति हुई।

सिद्धि से पहले

एक आवश्यक राज-काज के लिए मंत्री की तुरंत आवश्यकता पड़ी। उन्हें बुलाया गया तो मालूम पड़ा कि वे पूजा में बैठे हैं, इस समय न आ सकेंगे। काम जरूरी था, राजा ने स्वयं ही मंत्री के पास पहुँचना उचित समझा। राजा के पहुँचने पर भी मंत्री उपासना पूरी होने तक जप ध्यान में बैठे ही रहे। पूजा समाप्त होने पर जब मंत्री उठे तो राजा ने पूछा—"भला ऐसी भी कौन महत्त्वपूर्ण बात है जिसके लिए तुम मेरी उपेक्षा करके भी लगे रहे?"

मंत्री ने कहा—"राजन! मैं गायत्री जप कर रहा था। यह महामंत्र लोक और परलोक में कल्याण के सब साधन जुटाता है। इसका फल बहुत बड़ा है। इसी की मैं तन्मय होकर उपासना करता हूँ।" राजा ने कहा—"तब तो इसे हम भी सीखेंगे और वैसा ही लाभ हम भी उठावेंगे।" मंत्री ने कहा—"सीखने में हर्ज नहीं, पर आपको वैसा लाभ न मिल सकेगा जैसा बताया गया है। श्रद्धा और विश्वास के बिना मंत्र भी फल नहीं देते। मंत्र सीखने से पहले आपको श्रद्धा की साधना करनी चाहिए।"

राजा जिस काम से आए थे वह मंत्रणा करके वे वापस चले गए। पर उस मंत्र की बात उनके मस्तिष्क में जमी ही रही, जिसे मंत्री इतना महत्त्व देते हैं। एक दिन राजा ने प्रसंगवश मंत्री से पूछा—"श्रद्धा के बिना मंत्र क्यों फल नहीं देता?"

मंत्री ने कुछ उत्तर न दिया चुप हो गए। पर थोड़ी देर में एक बालक कर्मचारी उधर से निकला तो मंत्री ने उसे पास बुलाकर आज्ञा दी—"राजा के गाल पर एक चपत लगा दो।"

बालक इस आज्ञा को सुनकर सन्न रह गया। पर उसने वैसा किया नहीं। मंत्री ने दो-तीन बार वही आज्ञा दी तो भी उस लड़के ने मंत्री का कहना नहीं माना और चुपचाप खड़ा रहा।

मंत्री की असभ्यता देखकर राजा को क्रोध आया और उसने लड़के को आज्ञा दी कि इस मंत्री के गाल पर दो चपत लगाओ। कर्मचारी लड़के ने तुरंत मंत्री के गाल पर दो चपत जड़ दिए।

मंत्री ने नम्रतापूर्वक कहा—"राजन, यह आपके प्रश्न का उत्तर है। लड़के ने मेरा कहना नहीं माना। उसने आपको वैसी आज्ञा का अधिकारी और मुझे अनधिकारी माना। मंत्रों की भी यही बात है। वे श्रद्धावान और सत्पात्र की ही इच्छा पूरी करते हैं। इसलिए आपको अधिकारी बनने के लिए मैंने कहा था और मंत्र जप से भी पहले श्रद्धा सदाचार को अपनाने की प्रार्थना की थी।"

क्रोध को जीतो

चंडकौशिक ने प्रचंड तप तो किया पर उन्होंने क्रोध का शमन न किया। वह दुष्ट दुर्गुण उनमें ज्यों का त्यों बना रहा। एक दिन उनके पैर से मेंढ़क कुचल कर मर गया। साथी तपस्वी ने इस प्रमाद की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया तो चंडकौशिक आग बबूला हो गए। वे उस साथी को मारने दौड़े। क्रोध में मनुष्य अंधा हो जाता है। आवेश में उन्हें बीच में खड़ा खंभा भी न दीख पड़ा। दौड़ते हुए उसी से टकरा गए। यही चोट उनकी मृत्यु का कारण बन गई। मोहवश उन्होंने उसी आश्रम में फिर जन्म लिया और साधना के द्वारा उसी के संचालक बने। फिर भी उनका क्रोध गया नहीं।

एक बार कुछ भक्त-जन उपहार और पूजा उपकरण लेकर उपस्थित हुए। भक्तों के व्यवहार और उपहार में उन्हें कुछ दोष दीखा और वे क्रुद्ध होकर मारने दौड़े। भक्त भागे, अधिपति पीछे दौड़े। दौड़ तेजी से चल पड़ी। आवेश ने उन्हें पागल जैसा बना दिया था। रास्ते के व्यवधान भी उन्हें सूझ न पड़े। कुएँ में पैर पड़ा और उसी में उनकी मृत्यु हो गई।

तीसरी बार भी चंडकौशिक का जन्म उसी आश्रम में हुआ। अब की बार वे भयंकर विषधर सर्प की देह लेकर जन्मे। जो कोई उधर से

निकलता उसी का पीछा करते और जो पकड़ में आ जाता डस कर उसका प्राण हरण कर लेते। भगवान महावीर एक बार उस आश्रम में पधारे तो उन्हें भी चंडकौशिक के क्रोध का भाजन बनना पड़ा। दंशन से उनका पैर क्षत-विक्षत हो चला। फिर भी करुणा की उस प्रतिमूर्ति के चेहरे पर क्रोध न आया। वे मुसकराते रहे और उस क्षुद्र प्राणी को अपनी अनंत क्षमा का पात्र बनाए रहे। आश्रमवासी उस दुष्ट जीव को मारने आए तो उन्होंने रोक दिया।

चंडकौशिक ने भगवान महावीर की उच्च सत्ता को पहचाना तो अपनी भूल पर पश्चात्ताप करने और क्षमा माँगने लगा।

भगवान ने कहा—"भद्र! तुम निर्दोष हो। दोषी तो यह क्रोध ही है। यही मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है। इसी के प्रभाव से मानव प्राणी पागल, अंधा और अपराधी बनता है। तुम ने तप किया पर क्रोध न जीता। पहले क्रोध जीतो और पश्चात तप करो।"

चंडकौशिक ने भगवान महावीर का उपदेश शिरोधार्य किया और वे क्रोध समेत षड्रिपुओं को परास्त करने की साधना करने लगे। इसी से उन्हें सिद्धि भी मिली।

एक विचार को दूसरे पर टिकने न दो

महात्मा ईसा कहीं जा रहे थे कि मार्ग में उन्होंने अपने मैथ्यू नामक शिष्य को देखा। उसके पिता की मृत्यु हो गई थी और वह उसे रो-रोकर दफन कर रहा था।

मैथ्यू ने जैसे ही ईसा को देखा वैसे ही दौड़कर उनके पास आया और आस्तीन चूमकर तुरंत ही अपने पिता के शव की ओर लौट पड़ा।

ईसा ने समझा कि इसकी ममता नहीं मरी। अतः उन्होंने मैथ्यू को पुकार कर अपने पास बुलाया और उसे आज्ञा दी—"जिसकी मृत्यु हो गई वह भूत का साथी हुआ, तू उसकी लाश से मोह कर वर्तमान से दूर क्यों होना चाहता है?"

जब तक मैथ्यू कुछ समझे तब तक ईसा फिर बोल पड़े—"समय बड़ा बलवान है; इसने अनेक लाशों क़ो यत्नपूर्वक दफनाया है। उसके लिए तेरे पिता की लाश का दफनाना कुछ कठिन कार्य नहीं है।"

मैथ्यू इस असमंजस में था कि वह इस समय क्या करे? तभी उसने ईसा की स्पष्ट आज्ञा सुनी—"भूत को देखता रहेगा, तू यहाँ से मेरे साथ आ।"

शिष्य को गुरु की आज्ञा माननी पड़ी और वह लाश को वहीं पड़ी छोड़कर उनके साथ चल दिया।

संयोग की बात है कि जब ये दोनों आगे बढ़े तो ईसा का एक अन्य शिष्य भी उन्हें अपने पिता की लाश दफनाता हुआ मिला। परंतु जैसे ही उसने अपने गुरु को देखा वैसे ही दौड़कर उनके पास पहुँचा और उनके साथ चल दिया। ईसा ने उसे देखा तो बोले—"अरे तू क्यों चला आ रहा है?"

शिष्य ने साथ चलने का हठ किया तो ईसा बोले—"ऐसी कोई जल्दी नहीं है। मैं आगे के गाँव में ठहरूँगा। तुम लाश को दफना कर वहीं चले आना।"

वह शिष्य तो चला गया, परंतु एक समान घटनाओं पर दो प्रकार की व्यवस्था सुनकर मैथ्यू को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने गुरु से पूछा—"इसका क्या कारण है गुरुदेव! आपने मुझे तो अपने पिता की लाश को दफनाने भी नहीं दिया और उसे अपने पिता को दफन करने की आपने स्वयं आज्ञा दी। एक प्रकार की घटनाओं पर ही दो प्रकार की आज्ञा क्यों?"

ईसा ने उसे समझाया—"मैथ्यू! मैं जो कुछ कहता हूँ वही मेरे अंतर की आवाज है और वह आवाज एक निश्चित मत बनाकर निकलती है। जीवन की धारा को एक घाट पर बाँधा जाना कभी संभव नहीं है। धर्म यह कहता है कि एक विचार पर दूसरे विचार को मत टिकने दो। परंतु ऐसा करना लोहे के बंधन को दृढ़ करने के समान है और मनुष्य का यथार्थ बंधन लौह-शृंखला नहीं, कच्चा सूत है।"

अतः जो राग में फँसा है, उसे वैराग्य का उपदेश दो, परंतु जो राग मुक्त है, उसे वैराग्य का उपदेश देने से कोई लाभ नहीं।

आरोग्य रक्षा का रहस्य

महाराज शीलभद्र वन-उपवनों में होते हुए तीर्थयात्रा के लिए जा रहे थे। रात्रि को उन्होंने एक आश्रम के निकट अपना पड़ाव डाला। आश्रम में आचार्य दंपत्ति अपने कुछ शिष्यों के साथ निवास करते थे। शिष्यों का शिक्षण, ईश्वर आराधना, जीवन निर्वाह के लिए शरीर श्रम, इन्हीं में आश्रमवासियों का दिनभर का समय बीतता।

उस समय पर राजा शीलभद्र बीमार हो गए। चिकित्सकों के लिए दौड़-भाग शुरू हुई। कुशल वैद्य चिकित्सकों ने उन्हें स्वस्थ कर दिया। राजा ने आश्रमवासियों के एकांत जीवन पर विचार किया तो उन्होंने एक वैद्य स्थायी रूप से आश्रमवासियों की चिकित्सा के लिए रख दिया।

वैद्य को वहाँ रहते काफी समय बीत गया, किंतु कोई भी शिष्य या आचार्य अपनी चिकित्सा के लिए उनके पास नहीं आया। वैद्यराज अपने निष्क्रिय जीवन से क्षुब्ध हो गए। एक दिन उकता कर वह आचार्य के पास गए और बोले—"गुरुदेव! मुझे इतना समय हो गया यहाँ रहते किंतु कोई भी विद्यार्थी या व्यक्ति मेरे पास चिकित्सा के लिए नहीं आया, इसका क्या कारण है?"

"वैद्यराज! भविष्य में भी शायद ही कोई आपके पास चिकित्सा के लिए आएगा। प्रत्येक आश्रमवासी को सुबह से सायं तक श्रम करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त जब तक भूख परेशान नहीं करती कोई भी भोजन नहीं करता। सब अल्पभोजी हैं। जब कुछ भूख शेष रह जाती है तभी खाना बंद कर देते हैं। इस प्राकृतिक और स्वच्छ वातावरण में सभी को पवित्र वायु, प्रकाश मिलते हैं। यहाँ सर्वत्र जीवन छिटक रहा है इसलिए कोई भी बीमार नहीं पड़ता।" आचार्य ने कहा।

वैद्यराज बोले—"आचार्य प्रवर! स्वस्थ रहने के लिए यही मूल मंत्र हैं। तब मैं यहाँ रहकर क्या करूँ? अब मेरा राजदरबार को लौट जाना ही उचित है।"

आचार्य को प्रणाम कर वैद्यराज आश्रम से वापस चले गए।

बुरी संगति से दुर्गति

एक चित्रकार को किसी अत्यंत सौम्य किशोर का चित्र बनाना था। ऐसे लड़के की तलाश में चित्रकार देश-विदेश में वर्षों तक मारा-मारा फिरा।

बहुत कठिनाई से उसे एक ऐसा लड़का मिला, जिसके रोम-रोम से सज्जनता टपकती थी। उसे सामने बिठा कर चित्र बनाया गया।

चित्र बहुत ही सुंदर बना। उसे बाजार में बहुत पसंद किया गया, भारी बिक्री हुई। चित्रकार की सर्वत्र प्रशंसा होने लगी। उसे धन भी बहुत मिला।

वर्षों बाद चित्रकार को सूझा कि वह एक अत्यंत घृणित और दुष्ट भाव भंगिमा वाले अपराधी का भयंकर चित्र बनावेगा।

इसके लिए वह अपराधियों के अड्डे, बंदीगृह और दुराचारियों के आवास स्थानों में भ्रमण करने लगा। अंत में एक बड़ी डरावनी आकृति का मनुष्य मिला। चित्रकार ने उसका चित्र बनाया और वह भी बहुत बिका। सज्जनता और दुष्टता की दो परस्पर विरोधी प्रतिकृतियों का यह अद्भुत जोड़ा, चित्र जगत में बहुत विख्यात हो गया।

एक दिन वही दुष्ट, दुराचारी चित्रकार से मिलने जा पहुँचा। चित्रकार ने उसका परिचय पूछा तो उसने कहा—"यह दोनों चित्र मेरे ही आपने बनाए हैं। जब मैं बालक था तब सौम्य था और जब अधेड़ हुआ तो मैं ही ऐसा भयंकर दुष्ट हो गया। क्या आप इस रहस्य को जानते हैं?"

चित्रकार अवाक रह गया। उसने पूछा—"तुम.....तुम....तुम, भला इस प्रकार कैसे इतने परिवर्तित हो गए?"

अधेड़ ने मुँह ढक लिया। उसकी आँखें बरसने लगीं। रुँधे गले से बोला—"बुरी संगति ने मेरी यह दुर्गति बनाई। चित्रकार! संगति तुम्हारी कला से भी अधिक प्रभावशाली है।"

वासना का अभिशाप

रूपगर्विता अप्सरा वपु अपनी पूर्ण साज-सज्जा के साथ चल दी महर्षि दुर्वासा को उनके तप से विचलित करने के लिए। वपु ने सोचा सर्वत्र मेरा ही प्रभुत्व क्यों न रहे।

सारा वन प्रांत गूँज उठा उसके थिरकते गीत और पायलों की झंकारों से। दुर्वासा की कुटिया के समीप ही वह जा पहुँची। उन्मादकारी स्वर लहरी महर्षि के कर्ण कुहरों में प्रवेश करने लगी।

ऋषि का ध्यान भंग हुआ। उन्होंने योग-दृष्टि से देखा तो सब कुछ समझने में उन्हें देर न लगी। अप्सरा उन्हें लुभाने और पथभ्रष्ट करने आई है। तप को वासना परास्त करे, यह कल्पना उन्हें बुरी लगी। उन्हें क्षोभ हो आया, आँखें लाल हो गईं।

कुटी से बाहर निकलकर उस रूपगर्विता की थिरकन को एक क्षण के लिए ऋषि ने देखा और कहा—"अभागी! तुझे जो सौरभ मिला था, उससे तू जगती की प्रसुप्त भक्ति भावना को जगा सकती थी, सरसता को अमृत की दिशा में मोड़ सकती थी, पर हाय री मूर्खा! तू तो उलटा ही करने को उद्यत हो गई। जा, अपने कर्म का फल भोग। तू पक्षी की योनि में मारी-मारी फिरेगी। तेरे चार पुत्र होंगे पर वे अपंग ही बने रहेंगे।"

महर्षि का शाप मिथ्या कैसे होता। वपु अप्सरा का कलेवर छोड़, एक साधारण सी चिड़िया बन गई। अंडे दिए, उनसे चार बच्चे निकले। पर वे चारों ही अपंग थे। रूपगर्विता अप्सरा के पास अब पश्चात्ताप ही शेष था। कला की देवी वपु अपने नृत्य संगीत से आज भी दुर्वासना को भड़काकर जन मानस में अपनी प्रभुता जमाने में संलग्न है। पर लक्ष्य भ्रष्ट होने के कारण निराश्रित पक्षी की तरह ही उसे इधर-उधर

मारी-मारी फिरना पड़ रहा है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों ही बच्चे कला के गर्भ से उत्पन्न होते हैं। पर वासना का लक्ष्य बन जाने से तो वे अपंग ही रहेंगे।

कला की अप्सरा को आज भी शापित वपु की तरह पश्चात्ताप करना पड़ रहा है। वासना के लिए उसका किया हुआ नृत्य भला और किसी परिणाम पर पहुँचता भी कैसे?

दक्षिणा

सोमदत्त नामक एक ब्राह्मण राजा के पास गया और बोला— "महाराज! आपकी आज्ञा हो तो उज्जयिनी के नागरिकों को भागवत कथा सुनाऊँ। प्रजा का हित होगा और मुझ ब्राह्मण को यज्ञ के लिए दक्षिणा का लाभ भी मिल जाएगा।"

भोज ने अपने नवरत्नों और सभासदों की ओर देखा और फिर सोमदत्त की ओर मुख करके बोले—"आप अभी जाइए कुछ दिन भागवत का और पाठ कीजिए।"

पहला अवसर था जब महाराज भोज ने किसी ब्राह्मण को यों निराश किया था। लोगों को शंका हुई कि महाराज की धर्म-बुद्धि नष्ट तो नहीं हो गई, उन्होंने विद्या का आदर करना तो नहीं छोड़ दिया। कई सभासदों ने अपनी आशंका महाराज से प्रकट भी की पर उन्होंने तत्काल कोई उत्तर नहीं दिया।

ब्राह्मण निराश तो हुआ पर उसने प्रयत्न नहीं छोड़ा। उसने सारी भागवत कंठस्थ कर डाली और फिर राजदरबार में उपस्थित हुआ। किंतु इस बार भी वही उपेक्षापूर्ण शब्द सुनने को मिले। भोज ने कहा— "ब्राह्मणदेव! अभी आप अच्छी तरह अध्ययन नहीं कर सके। जाकर अभी और अध्ययन कीजिए।" इसी प्रकार सोमदत्त कई बार राजदरबार में उपस्थित हुआ पर उसे उपेक्षा ही मिली।

ब्राह्मण ने इस बार भागवत के प्रत्येक श्लोक को पढ़ा ही नहीं एक-एक भाव का मनन भी किया जिससे भगवान के प्रति निष्ठा जाग

गई। उसने आदर, सत्कार, संपत्ति और सम्मान की सारी भावनाएँ छोड़ दीं और लोगों में ही धर्म भावनाएँ जाग्रत करने लगा।

बहुत समय तक भी जब वे दुबारा उज्जैन न गए तो भोज ने उनका पता लगाया। सारी स्थिति का पता लगाकर उन्होंने एक दिन सोमदत्त को बुलाकर प्रणाम किया और विनयपूर्वक निवेदन किया— "महाराज! आप उज्जयिनी के नागरिकों को भागवत सुनाएँ तो इनका कल्याण हो।"

भागवत हुई और सोमदत्त को इतनी दक्षिणा मिली कि फिर कभी यज्ञ के लिए धनाभाव नहीं हुआ। एक दिन सभासदों ने पूछा—"महाराज! एक दिन यही ब्राह्मण जब अपनी ओर से आया था तब आपने उपेक्षा बरती थी, आज आपने उसे प्रणाम भी किया और आग्रह भी, सो क्यों?"

भोज ने कहा—"तब यह धन के लिए भागवत-कथा सुनाना चाहते थे पर अब इनकी भागवत-कथा धन के लिए नहीं लोक-मंगल के लिए हो गई है।"

चावलों में कंकड़

संत पुरंदर गृहस्थ थे तो भी क्या लोभ, क्या काम और क्रोध उन्हें छू भी नहीं गए थे। दो-तीन घरों में भिक्षाटन करते, उससे जो दो मुट्ठी चावल और आटा मिल जाता उससे वे अपना और अपनी धर्मपत्नी सरस्वती देवी का उदर पोषण कर लेते और दिनभर लोकसेवा के कार्यों में जुटे रहते।

एक दिन विजय नगर के राजपुरोहित व्यासराय ने महाराज कृष्ण देवराय से कहा—"राजन! संत पुरंदर गृहस्थ होकर भी राजा जनक की तरह विकार मुक्त हैं, दिनभर बेचारे पिछड़ों को ज्ञान दान देने, कष्ट पीड़ितों की सेवा करने में लगे रहते हैं। स्वार्थ की बात तो उनके मन में ही नहीं आती।" महाराज कृष्णदेव राय हँसे और बोले—"गृहस्थ में रहकर कौन तो निर्लोभ रहा, कौन काम-वासना से बचा? यदि गृहस्थ

में ऐसा संभव हो जाए तो संसार के सभी मनुष्य अपना शरीर सार्थक न कर लें।"

कर सकते हैं—व्यासराय बोले—"यदि लोग संत पुरंदर और देवी सरस्वती की भाँति निर्लोभ, सेवापरायण व सरल जीवन जीना सीख लें।" महाराज कुछ खिन्न से हो गए, बोले—"ऐसा ही है तो आप उनसे कुछ दिन यहीं हमारे यहाँ भिक्षाटन के लिए कह दें।" व्यासराय ने संत पुरंदर से जाकर आग्रह किया—"आप आगे से राजभवन से भिक्षा ले आया करें।" संत पुरंदर ने कहा—"मैं जिन लोगों के बीच रहता हूँ, जिनकी सेवा करता हूँ उन अपने कुटुंबीजनों से मिल गई भिक्षा ही पर्याप्त है। दो ही पेट तो हैं उसके लिए राजभवन जाकर क्या करूँगा?" पर व्यासराय तब तक बराबर जोर डालते रहे जब तक संत ने उनका आग्रह स्वीकार नहीं कर लिया।

संत पुरंदर राजभवन जाने लगे। वहाँ से मिले चावल ही उनके उदर पोषण के लिए पर्याप्त होते। संत अपनी सहज प्रसन्नता लिए हुए जाते, उसका अर्थ महाराज कुछ और ही लगाते। एक दिन तो उन्होंने व्यासराय से कह भी दिया—"देख ली आपके संत की निस्पृहता! आजकल देखते नहीं कितने प्रसन्न रहते हैं।" व्यासराय बोले—"आपका तात्पर्य समझा नहीं।" इस पर महाराज ने कहा—"आप मेरे साथ चलिए अभी बात स्पष्ट हो जाएगी।" महाराज राजपुरोहित के साथ संत पुरंदर के घर पहुँचे, देखा उनकी धर्मपत्नी चावल साफ कर रही है। महाराज ने पूछा—"बहन! यह क्या कर रही हैं?" इस पर वे बोलीं—"आजकल न जाने कहाँ से भिक्षा लाते हैं इन चावलों में कंकड़-पत्थर भरे पड़े हैं।" यह कहकर उन्होंने अब तक बीने कंकड़ उठाए और बाहर की तरफ उन्हें फेंकने चल पड़ीं। महाराज बोले—"भद्रे यह तो हीरे-मोती हैं जिन्हें आप कंकड़-पत्थर कहती हैं।" सरस्वती देवी हँसी और बोलीं—"पहले हम भी यही सोचते थे, पर अब जब से भक्ति और सेवा की संपत्ति मिल गई इनका मूल्य कंकड़-

पत्थर के ही बराबर रह गया।" महाराज यह उत्तर सुनकर अवाक रह गए। वे आगे और कुछ न बोल सके।

बिना विचारे जो करे

एक बार वन्य पशुओं ने प्रजातंत्र की स्थापना की। लोकसभा के चुनाव के लिए गज दल, सिंह दल, श्वान और शृगाल दल आदि अनेक राजनैतिक पार्टियाँ चुनाव अभियान में उतरीं। समय समीप आ जाने से चुनाव में थोड़ी तेजी आ गई। सभी दल अपने-अपने पक्ष की दलीलें देते और मतदाताओं को अपने दल के समर्थन की अपील करते।

श्वान दल उनमें ज्यादा बातूनी और चालाक था। उसने सभी छोटे-छोटे दलों को बुलाकर समझाया—"देखो बड़े-बड़े नेताओं के भ्रष्टाचार और शोषण से तुम्हारी हम रक्षा करेंगे, सो तुम हमारा ही समर्थन करो।" उन्होंने सियारों, भेड़ों, खरगोश और लोमड़ियों सबको आश्वासन दिया कि हम तुम्हें देखकर कभी भूँका नहीं करेंगे।

छोटे-छोटे जंतु शरीर से ही नहीं बुद्धि के भी बौने निकले, उन्होंने श्वान पार्टी को जमकर वोट दिए और सचमुच संसद में कुत्तों का आधिपत्य हो गया। अब क्या था कुत्तों की मौज आ गई। संसद में कोई बिल रखा जाता तो एक कुत्ता भूँककर उसका समर्थन करता तो शेष सभी कुत्ते भी तुक मिलाते और इस तरह वे जो चाहते मनमानी करते। पर अब हो भी क्या सकता था, अब तक कुत्तों ने अपनी जड़ें मजबूत कर ली थीं, उनसे सत्ता छीनना आसान न था।

अन्य जीव अपने बिना विचारे किए पर घोर पश्चात्ताप करते रहे।

समय के पंख

एक बार एक कलाकार ने अपने चित्रों की प्रदर्शनी लगाई। उसे देखने के लिए नगर के सैकड़ों धनी-मानी व्यक्ति भी पहुँचे। एक लड़की भी उस प्रदर्शनी को देखने आई। उसने देखा सब चित्रों के अंत में एक ऐसे मनुष्य का भी चित्र टँगा है जिसके मुँह को बालों से ढक

दिया गया है और जिसके पैरों पर पंख लगे थे। चित्र के नीचे बड़े अक्षरों से लिखा था—'अवसर'। चित्र कुछ भद्दा सा था इसलिए लोग उस पर उपेक्षित दृष्टि डालते और आगे बढ़ जाते।

लड़की का ध्यान प्रारंभ से ही इस चित्र की ओर था। जब वह उसके पास पहुँची तो चुपचाप बैठे कलाकार से पूछ ही लिया— "श्रीमान जी यह चित्र किसका है?" 'अवसर का' कलाकार ने संक्षिप्त सा उत्तर दिया। आपने इसका मुँह क्यों ढक दिया है? लड़की ने दुबारा प्रश्न किया। इस बार कलाकार ने विस्तार से बताया—"बच्ची! प्रदर्शनी की तरह अवसर हर मनुष्य के जीवन में आता है और उसे आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है, किंतु साधारण मनुष्य उसे पहचानते तक नहीं इसलिए वे जहाँ थे वहीं पड़े रह जाते हैं। पर जो अवसर को पहचान लेता है वही जीवन में कुछ काम कर जाता है।"

"और इसके पैरों में पंखों का क्या रहस्य है?" लड़की ने उत्सुकता से पूछा। कलाकार बोला—"यह जो अवसर आज चला गया वह फिर कल कभी नहीं आता।"

लड़की इस मर्म को समझ गई और उसी क्षण से अपनी उन्नति के लिए जुट गई।

मिथ्या-प्रेम

एक नवयुवक एक सिद्ध महात्मा के आश्रम में आया करता था। महात्मा उसकी सेवा से प्रसन्न हो बोले—"बेटा! आत्म-कल्याण ही मनुष्य जीवन का सच्चा लक्ष्य है इसे ही पूरा करना चाहिए।" यह सुन युवक ने कहा—"महाराज! वैराग्य धारण करने पर मेरे माता-पिता कैसे जीवित रहेंगे? साथ ही मेरी युवा पत्नी मुझ पर प्राण देती है वह मेरे वियोग में मर जाएगी।" महात्मा बोले—"कोई नहीं मरेगा बेटा! यह सब दिखावटी प्रेम है। तू नहीं मानता तो परीक्षा कर ले।" युवक राजी हो गया तो महात्मा ने उसे प्राणायाम करना सिखाया और बीमार

बनकर साँस रोक लेने का आदेश दिया। युवक ने घर जाकर वही किया। बड़े-बड़े वैद्यों को चिकित्सा हुई परंतु दूसरे दिन ही उसने साँस रोक ली। घर वाले उसे मरा समझ हो-हल्ला मचाने और पछाड़ें खाने लगे। पड़ोस के बहुत से लोग इकट्ठे हो गए।

तभी महात्मा भी वहाँ जा पहुँचे और युवक को देखकर उसकी गुण गरिमा का बखान करते हुए बोले—"हम इस लड़के को जीवित कर देंगे, परंतु तुम्हें कुछ त्याग करना पड़ेगा।" घर वाले बोले—"आप हमारा सारा धन, घर-बार, यहाँ तक कि प्राण भी ले लें, परंतु इसे जीवित कर दें।" महात्मा बोले—"एक कटोरा दूध लाओ।" तुरंत आज्ञा का पालन किया गया। महात्मा ने उसमें एक चुटकी राख डालकर कुछ मंत्र सा पढ़ा और बोले—"जो कोई इस दूध को पी लेगा वह मर जाएगा और यह लड़का जीवित हो जाएगा।" अब समस्या यह थी कि दूध को कौन पीवे। माता-पिता बोले—"कहीं न जिया तो एक जान और गई। यदि हम रहेंगे तो पुत्र और हो जाएगा।" पत्नी बोली—"इस बार जीवित हो जाएँगे तो क्या है, फिर कभी मरेंगे। मरना तो पड़ेगा ही। इनके न रहने पर मायके में सुख से जिंदगी काट लूँगी।" रिश्तेदार बगलें झाँकने लगे और पड़ोसी तो पहले ही नदारद हो गए। तब महात्मा ने कहा—"अच्छा, मैं ही इस दूध को पिए लेता हूँ।" तो सभी प्रसन्न होकर बोले—"हाँ महाराज! आप धन्य हैं। साधु-संतों का जीवन ही परोपकार के लिए है।" महात्मा ने दूध पी लिया और युवक को झकझोरते हुए बोले—"उठ बेटा! अब तो तुझे पूरी तरह ज्ञान हो गया कि कौन तेरे लिए प्राण देता है?" युवक तुरंत उठ पड़ा और महात्मा के चरणों में गिर पड़ा। घर वालों के बहुत रोकने पर भी वह महात्मा के साथ चला गया और सांसारिक मोह त्यागकर आत्मकल्याण की साधना करने लगा।

अनुकरण अच्छा, अंधानुकरण नहीं

एक गाँव में दो युवक रहते थे। दोनों में बड़ी मैत्री थी। जहाँ जाते साथ-साथ जाते। एक बार दोनों एक धनी व्यक्ति के साथ उसकी

ससुराल गए। किसी धनी व्यक्ति के साथ रहने का यह पहला अवसर था, सो वे अपने धनी मित्र की प्रत्येक गतिविधि ध्यान से देखते रहे।

गरमियों के दिन थे। रात में उक्त युवक के लिए शयन की व्यवस्था खुले स्थान पर की गई। पर्याप्त शीतलता बनी रहे इसके लिए वहाँ चारों तरफ जल छिड़का गया और रात को ओढ़ने के लिए बहुत ही हलकी मखमली चादर दी गई।

अन्य दोनों युवकों ने इतना ही जाना कि इस तरह का रहन-सहन बड़प्पन की बात है। कुछ दिन बाद उन्हें भी अपनी-अपनी ससुराल जाने का अवसर मिला पर वे दिन गरमी के न होकर तीव्र शीत के थे। नकल तो नकल ही है। दोनों ने अपना बड़प्पन जताने के लिए बिस्तर खुले आकाश के नीचे लगवाया, लोगों के लाख मना करने पर भी उन्होंने बिस्तर के आस-पास पानी भी छिड़कवाया और ओढ़ने के लिए कुल एक-एक चादर वह भी हलकी ली।

रात को पाला पड़ गया सो दोनों को निमोनियाँ हो गया। चिकित्सा कराई गई तब कठिनाई से जान बची।

इतनी कथा सुनाने के बाद गुरुजी ने शिष्य को समझाया—"तात! उचित और अनुचित का विचार किए बिना जो औरों का अनुकरण करता है वह मूर्ख ऐसे ही संकट में पड़ता है जैसे वह दोनों युवक।"

कर्म करो तभी मिलेगा

कौरवों की राजसभा लगी हुई है। एक ओर कोने में पांडव भी बैठे हैं। दुर्योधन की आज्ञा पाकर दुःशासन उठता है और द्रोपदी को घसीटता हुआ राजसभा में ला रहा है। आज दुष्टों के हाथ उस अबला की लाज लूटी जाने वाली है। उसे सभा में नंगा किया जाएगा। वचनबद्ध पांडव शिर नीचा किए बैठे हैं।

द्रोपदी अपने साथ होने वाले अपमान से दुखी हो उठी। उधर सामने दुष्ट दुःशासन आ खड़ा हुआ। द्रोपदी ने सभा में उपस्थित सभी राजों-महाराजों, पितामहों को रक्षा के लिए पुकारा, किंतु दुर्योधन के भय से और

उसका नमक खाकर जीने वाले कैसे उठ सकते थे। द्रोपदी ने भगवान को पुकारा, अंतर्यामी घट-घटवासी कृष्ण दौड़े आए कि आज भक्त पर भीर पड़ी है। द्रोपदी को दर्शन दिया और पूछा—"किसी को वस्त्र दिया हो तो याद करो।" द्रोपदी को एक बात याद आई और बोली—"भगवन्! एक बार पानी भरने गई थी तो तपस्या करते हुए ऋषि की लँगोटी नदी में बह गई, तब उसे धोती में से आधी फाड़कर दी थी।" कृष्ण भगवान ने कहा—"द्रोपदी अब चिंता मत करो। तुम्हारी रक्षा हो जाएगी।" और जितनी साड़ी दु:शासन खींचता गया उतनी ही बढ़ती गई। दु:शासन हार कर बैठ गया, किंतु साड़ी का ओर-छोर ही नहीं आया।

यदि मनुष्य का स्वयं का कुछ किया हुआ न हो तो स्वयं विधाता भी उसकी सहायता नहीं कर सकता क्योंकि सृष्टि का विधान अटल है। जिस प्रकार विधान लगाने वाले विधायकों को स्वयं उसका पालन करना पड़ता है वैसे ही ईश्वरीय अवतार, महापुरुष, स्वयं भगवान भी अपने बनाए विधानों का उल्लंघन नहीं कर सकते। इससे तो उनका सृष्टि संचालन ही अस्त-व्यस्त हो जाएगा।

इस संबंध में उन लोगों को सचेत होकर अपना कर्म करना चाहिए जो सोचते हैं कि भगवान सब कर देंगे और स्वयं हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें। जीवन में जो कुछ मिलता है अपने पूर्व या वर्तमान कर्मों के फल के अनुसार। बैंक बैलेंस में यदि रकम नहीं तो खातेदार को खाली हाथ लौटना पड़ता है। मनुष्य के कर्मों के खाते में यदि जमा में कुछ नहीं हो तो कुछ नहीं मिलने का। कर्म की पूँजी जब इकट्ठी करेंगे तभी कुछ मिलना संभव है। भगवान और देवता क्या करेंगे?

साधक की कसौटी

एक शिष्य ने अपने आचार्य से आत्मसाक्षात्कार का उपाय पूछा। पहले तो उन्होंने समझाया बेटा यह कठिन मार्ग है, कष्टसाध्य क्रियाएँ करनी पड़ती हैं। तू कठिन साधनाएँ नहीं कर सकेगा, पर जब उन्होंने देखा कि शिष्य मानता नहीं तो उन्होंने एक वर्ष तक एकांत में गायत्री

मंत्र का निष्काम जाप करके अंतिम दिन आने का आदेश दिया। शिष्य ने वही किया। वर्ष पूरा होने के दिन आचार्य ने झाड़ू देने वाली स्त्री से कहा कि अमुक शिष्य आवे तब उस पर झाड़ू से धूल उड़ा देना। स्त्री ने वैसा ही किया। साधक क्रोध में उसे मारने दौड़ा, पर वह भाग गई। वह पुनः स्नान करके आचार्य-सेवा में उपस्थित हुआ। आचार्य ने कहा—"अभी तो तुम साँप की तरह काटने दौड़ते हो, अतः एक वर्ष और साधना करो।" साधक को क्रोध तो आया परंतु उसके मन में किसी न किसी प्रकार आत्मा के दर्शन की तीव्र लगन थी, अतएव गुरु की आज्ञा समझकर चला गया।

दूसरा वर्ष पूरा करने पर आचार्य ने झाड़ू लगाने वाली स्त्री से उस व्यक्ति के आने पर झाड़ू छुआ देने को कहा। जब वह आया तो उस स्त्री ने वैसा ही किया। परंतु इस बार वह कुछ गालियाँ देकर ही स्नान करने चला गया और फिर आचार्य जी के समक्ष उपस्थित हुआ। आचार्य ने कहा—"अब तुम काटने तो नहीं दौड़ते पर फुफकारते अवश्य हो, अतः एक वर्ष और साधना करो।"

तीसरा वर्ष समाप्त होने के दिन आचार्य जी ने उस स्त्री को कूड़े की टोकरी उँड़ेल देने को कहा। स्त्री के वैसा करने पर शिष्य को क्रोध नहीं आया बल्कि उसने हाथ जोड़कर कहा—"हे माता! तुम धन्य हो।" तीन वर्ष से मेरे दोष को निकालने के प्रयत्न में तत्पर हो। वह पुनः स्नान कर आचार्य सेवा में उपस्थित हो उनके चरणों में गिर पड़ा।

औषधि रुपए एक की, स्वस्थ रहे संसार

नानक ने सोचा कबीर की बुद्धि की परीक्षा करनी चाहिए। उन्होंने एक चवन्नी कबीर के पास भेजी और कहला भेजा कि इस चवन्नी की कोई ऐसी वस्तु लेनी चाहिए जिसे खाकर एक सौ व्यक्ति तृप्त हो जाएँ।

कबीर ने चवन्नी ले ली, बाजार गए और चार आने की बढ़िया वाली हींग लाए। उसी दिन नगर के एक सेठ भोज कर रहे थे। चार

आने की हींग लेकर कबीर सेठ के पास पहुँचे और उसकी छोंक लगवा दी। वह दाल जिस-जिसने खाई, हींग की बघार ने सब को तृप्त किया। कबीर की हींग की सबने प्रशंसा की।

अब कबीर ने सोचा नानक की बुद्धि की परीक्षा लेनी चाहिए। उन्होंने एक रुपया नानक के पास भेजा और कहलवा भेजा एक रुपए की औषधि से सारे संसार के रोगियों को अच्छा कर दो। नानक ने गंभीरतापूर्वक विचार किया सारे संसार में ३ अरब तो मनुष्य ही हैं उन्हीं को एक स्थान पर बुलाना कहाँ संभव है? फिर भेड़, बकरी, चूहे, खरगोश, मछली, कछुए न जाने कितने जंतु इस पृथ्वी पर हैं, एक रुपए में सब की औषधि किस प्रकार हो?

उन्होंने एक रुपए की गुग्गल, छार छबीला, तालीस पत्र, कपूर-कचरी, पृष्ठपर्णी आदि औषधियाँ मँगाईं और हवन करने लगे। औषधियाँ जलकर नष्ट नहीं हुईं, वायुभूत होकर सारे संसार में फैल गईं। जलचर, थलचर, नभचर, सबने साँस ली। औषधि सब के शरीर में पहुँची। सब के शरीरों के रोग कीटाणु नष्ट हो गए। सब स्वस्थ हो गए।

कबीर ने नानक की भूरि-भूरि प्रशंसा की तो नानक ने कहा—"कबीर यह श्रेय तो उन ऋषियों का है जिन्होंने संसार के स्वास्थ्य के लिए यज्ञ जैसे महान विज्ञान की शोध की थी।"

ग्राहकता

विद्यालय की शिक्षा समाप्त कर लौटे एक नवयुवक को अपने ज्ञान का बड़ा अभिमान हो गया। कोई भी आता वह किसी को भी नमस्कार नहीं करता था, उसे अहंकार था कि अब मुझे सीखने के लिए कुछ रहा ही नहीं। इस अभिमान में वह अपने माता-पिता की भी अवज्ञा करता।

पिता बड़ा चतुर था उसने जान लिया कि मति-भ्रम बेटे को अहंकार से उबारा न गया तो उसका विकास रुक जाएगा। वह एक दिन अपना सर्वनाश कर लेगा।

सो एक दिन घर से थोड़ी चीनी ली और उसे धूल में मिलाकर घर के एक कोने में पटक दी। पिता जब वहाँ से चला गया तो घर के छोटे लड़कों ने सोचा धूल से निकाल कर चीनी खानी चाहिए पर मुश्किल यह थी कि धूल से चीनी के कण ढूँढ़ निकालना कठिन था। लड़कों ने सोचा बड़े भैया बहुत विद्वान हैं, उन्हें जरूर कोई ऐसी विद्या आती होगी जिससे इस चीनी को धूल से अलग किया जा सके। बालकों ने जाकर निवेदन किया तो वे ऐंठते हुए वहाँ पहुँचे भी पर ढेर में चीनी ऐसे मिल गई थी कि उसे देखते ही उनकी अकल गुम हो गई। कई उपाय किए पर तोले भर चीनी भी नहीं निकाली जा सकी।

जितनी युवक की खीझ बढ़ती उतना ही छोटे बच्चे हँसते और उनके अहंकार को अगूँठा दिखाते। हारकर युवक वहाँ से भाग गया और शाम तक किसी को दिखाई न दिया।

सायंकाल पिताजी भी आए और पुत्र जी भी। ढेर के पास से गुजरे तो वह आश्चर्यचकित थे कि धूल के ढेर से सारी चीनी गायब थी। पिता ने छोटे-छोटे लड़कों को बुलाया और डाँटकर पूछा— "इसकी चीनी कौन निकाल ले गया।"

लड़कों ने कहा—"पिता जी वह तो सब चींटियाँ चुन ले गईं।" युवक यह सुनते ही हैरान रह गया। जो काम वह घंटों की परेशानी के बाद भी नहीं कर सका उसे चींटियाँ इतनी आसानी से कर गईं।

युवक का सारा अहंकार गल गया। उसने सोचा यदि चींटी जैसी गुण ग्राहकता से हम भी वंचित न हुए होते तो अब तक कितनी उन्नति कर गए होते।

सती का तेज

पतिव्रत की साधिका कौशिकी को रुग्ण पति मिला। किसी पूर्वजन्म के कुकृत्य से कुष्ठ पीड़ित था वह ब्राह्मण। स्वयं चलने-फिरने में भी अशक्त। किंतु कौशिकी की साधना अपने आप में पूरी थी। दुर्बल व्यक्तित्व समर्थ को खोजता है और समर्थ अशक्तों की

सहायता में ही अपनी सार्थकता देखता है। रुग्ण पति से उसे कोई शिकायत न थी। अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिए उसके पास हाथ-पैर थे और उसके साथ परमात्मा का अनुग्रह था कि सेवा वृत्ति के विकास के लिए घर में ही अवसर प्रदान किया। कौशिकी ईश्वर के अनुग्रह के रूप में अपने रुग्ण पति को देवता तुल्य मानती थी जो उसके विकास के लिए रोगी का स्वरूप स्वीकार किए थे।

एक दिन अँधेरी रात्रि। पति को पीठ पर लिए कौशिकी चली जा रही थी। मार्ग में मांडव्य ऋषि तपस्या में लीन थे। अंधकार में दिखाई न देने के कारण पति का पैर महर्षि से टकरा गया। सामान्य भूल को ऋषि ने संभवतः तपस्वी होने के अहंकार के कुप्रभाव से जान-बूझकर की हुई अनीति मान लिया। बिना वस्तु-स्थिति समझने का प्रयास किए शाप दे दिया—"जिस व्यक्ति ने यह धृष्टता की है वह सूर्योदय होते ही मृत्यु को प्राप्त होगा।"

कौशिकी ने सुना, स्पष्टीकरण दिया किंतु कोई लाभ न निकला। विनयशील की विनय को कभी-कभी लोग उसकी असमर्थता समझ लेते हैं। अपनी व्रतशीलता से सांसारिक भयानक रोग को साधना एवं प्रगति का सोपान बनाने वाली नारी की सामर्थ्य संभवतः प्रकट होने को थी। कौशिकी ने कहा—"मैं निरपराध वैधव्य दंड न भोगूँगी। यदि सूर्योदय के साथ पति की मृत्यु आने वाली है तो सूर्योदय ही न होगा।"

पतिव्रता के व्रत की शक्ति की अवहेलना करने से सूर्य देव मुकर गए। हाहाकार मच गया। ऋषि मांडव्य ने अपनी भूल तो समझी किंतु छोड़ा हुआ तीर वापस करने की क्षमता का अपने में अभाव पाया। कौशिकी के पति का श्राप वे वापस न ले सकते थे। तो क्या विश्वहित के लिए कौशिकी को वैधव्य स्वीकार करना होगा?

नहीं! सती अनुसुइया आगे आईं। उन्होंने कौशिकी से कहा—"बहन, सूर्योदय होने दो। तुम्हारे पति को पुनर्जीवित मैं कर लूँगी।" दोनों सती नारियों के तेज तथा विवेक का प्रमाण पाकर सारा संसार धन्य-धन्य कर उठा।

अमानत की वापसी

धर्मगुरु रबी मेहर और दिनों की भाँति आज भी अपनी पाठशाला में बच्चों को पाठ सिखाते रहे। उस दिन उन्होंने भगवान की न्यायकारिता का उपदेश किया। अपनी धर्मपत्नी को भी वह प्रातःकाल यही समझा कर आए थे कि यह संसार और यहाँ का सब कुछ भगवान का है उसे समर्पित किए बिना किसी वस्तु का उपभोग नहीं करना चाहिए।

उन दिनों नगर में महामारी फैली थी। दुर्भाग्य ने उस दिन उन्हीं के घर डेरा डाला और मेहर के दोनों फूल से सुंदर बच्चों को मृत्यु की गोद में सुला दिया। मेहर की धर्मशीला पत्नी ने दोनों बच्चों के शव शयनागार में लिटा दिए और उन्हें सफेद चादर से ढक दिया। आप घर की सफाई और भोजन व्यवस्था में व्यस्त हो गई।

साँझ हुई और रबी मेहर घर लौटे। मेहर ने आते ही पूछा— "दोनों बच्चे कहाँ हैं?" संतोष स्मित मुद्रा में पत्नी ने कहा—"यहाँ कहीं खेल रहे होंगे, जल लीजिए, हाथ-मुँह धोकर भोजन लीजिए। भोजन तैयार है।" मेहर ने निश्‍चित होकर भगवान का ध्यान किया और फिर पाकशाला में आए। उन्हें घर में आज कुछ उदासी दीख रही थी। बच्चे नहीं थे। पूछा—"बच्चे अभी खेलकर नहीं लौटे क्या?" पत्नी ने कहा—"अभी बुलाए देती हूँ लीजिए दिनभर उपवास किया है भोजन कर लीजिए।"

रबी ने भोग लगाया और फिर उस अन्न को प्रसाद मानकर प्रेम-पूर्वक ग्रहण किया। हाथ-मुँह धोकर उठे तो फिर पूछा—"बच्चे अभी तक नहीं आए, बाहर जाकर पता लगाऊँ क्या?"

पत्नी ने कहा—"नहीं स्वामी! बाहर जाने की आवश्यकता नहीं है पर हाँ यह तो बताइए, आप जो कह रहे थे कि संसार में जो कुछ है वह सब भगवान का है, यदि भगवान अपनी कोई वस्तु वापस ले ले तो क्या मनुष्य को उसके लिए दुःख करना चाहिए।" इसमें दुःख की क्या बात भद्रे! रबी मेहर ने आत्मसंतोष की मुद्रा में कहा। पर आज तुम्हारी

बातें कुछ रहस्यपूर्ण सी लगती हैं प्रिये! कहो न बात क्या है, कुछ छुपाना चाहती हो क्या?

नहीं स्वामी! आप से क्या छुपाना, मैं तो आपके ही आदर्श का पालन कर रही हूँ। यह लीजिए यह रहे आपके दोनों बच्चे, प्राण भगवान के थे सो उन्होंने वापस ले लिए, यह कहकर मेहर की पत्नी ने बच्चों के कफन मुँह से हटा दिए।

तुम एक दिन भी सहन न कर सके

एक जंगल के निकट एक महात्मा रहते थे। वे बड़े अतिथि-भक्त थे। नित्यप्रति जो भी पथिक उनकी कुटिया के सामने से गुजरता था उसे रोककर भोजन दिया करते थे और आदरपूर्वक उसकी सेवा किया करते थे।

एक दिन किसी पथिक की प्रतीक्षा करते-करते उन्हें शाम हो गई पर कोई राही न निकला। उस दिन नियम टूट जाने की आशंका में वे बड़े व्याकुल हो रहे थे। उन्होंने देखा कि एक सौ साल का बूढ़ा थका-हारा चला आ रहा है। महात्मा जी ने उसे रोककर पैर धुलाए और भोजन परोसा।

बूढ़ा बिना भगवान का भोग लगाए और धन्यवाद दिए तत्काल भोजन पर जुट गया। यह सब देख महात्मा को आश्चर्य हुआ और बूढ़े से इस बात की शंका की। बूढ़े ने कहा—"मैं न तो अग्नि को छोड़कर किसी ईश्वर को मानता हूँ न किसी देवता को।"

महात्मा जी उसकी नास्तिकतापूर्ण बात सुनकर बड़े क्रुद्ध हुए और उसके सामने से भोजन का थाल खींच लिया तथा बिना यह सोचे कि रात में वह इस जंगल में कहाँ जाएगा, कुटी से बाहर कर दिया। बूढ़ा अपनी लकड़ी टेकता हुआ एक ओर चला गया।

रात में महात्मा जी को स्वप्न हुआ, भगवान कह रहे थे—"साधु, उस बूढ़े के साथ किए तुम्हारे व्यवहार ने अतिथि-सत्कार का सारा पुण्य क्षीण कर दिया।"

महात्मा ने कहा—"प्रभु! उसे तो मैंने इसलिए निकाला कि उसने आपका अपमान किया था।" प्रभु बोले—"ठीक है, वह मेरा नित्य अपमान करता है तो भी मैंने उसे सौ साल तक सहा किंतु तुम एक दिन भी न सह सके।" भगवान अंतर्धान हो गए और महात्मा जी की भी आँख खुल गई।

घात नहीं करते

अश्वपति ने राज्य विस्तार तो नहीं किया पर समर्थ नागरिक तैयार करने के लिए जो भी उपाय संभव थे, उसने किए। यही कारण था कि उसके राज्य में सब स्वस्थ, वीर और बहादुर नागरिक थे। काना, कुबड़ा, दीन-हीन और आलसी उनमें से एक भी न था। अश्वपति के राज्य में जन्म लेते ही बच्चे राज्याधिकारियों के नियंत्रण में सौंप दिए जाते थे। उनकी शिक्षा-दीक्षा का प्रबंध अश्वपति स्वयं करता था। उसका हर नवयुवक चरित्र बल, दृढ़ता, शौर्य और संयम की प्रतिमूर्ति था। यही कारण था कि उस छोटे से राज्य से कोई टक्कर नहीं ले पाता था।

प्रतापी सम्राट पोरस से युद्ध करने के बाद सिकंदर की सेना ने आगे बढ़ने से इनकार कर दिया, उस समय सिकंदर ने सोचा आस-पास के छोटे राज्य ही हस्तगत क्यों न कर लिए जाएँ। उसकी वक्र दृष्टि अमृतसर के समीप रावी नदी के तट पर बसे अश्वपति के राज्य पर पड़ी। सिकंदर ने अश्वपति की वीरता की गाथाएँ पहले ही सुन रखी थीं, उसके सिपाही भी हिम्मत हार चुके थे, इसलिए उसने मुकाबले की अपेक्षा छल से रात में अश्वपति पर आक्रमण कर दिया। युद्ध के लिए अनिश्चित अश्वपति के सैनिकों को सिकंदर के सिपाहियों ने छलपूर्वक काटा और इस तरह यह युद्ध भी यूनानियों के हाथ रहा। महाराज अश्वपति बंदी बना लिए गए। सिकंदर ने अश्वपति के शौर्य की परीक्षा लेने के इरादे से उसे बंधनमुक्त कर दिया और संधि कर ली। इस खुशी में दोनों नरेशों का एक सम्मिलित दरबार आयोजित किया गया। अश्वपति अपने खूँख्वार लड़ाका कुत्तों के लिए विश्व-

विख्यात था, चार कुत्ते हमेशा अश्वपति के साथ रहते थे। जब वह दरबार में पहुँचे तब वह कुत्ते भी उनके साथ थे। सिकंदर ने उनके पहुँचते ही व्यंग किया—"महाराज ये भारतीय कुत्ते हैं।" अश्वपति ने तुरंत उत्तर दिया—"हाँ यह छिपकर आक्रमण नहीं करते, शेरों से भी मैदान में लड़ते हैं।" लड़ाई का आयोजन किया गया।

उधर शेर इधर दो कुत्ते, लड़ाई छिड़ गई। शेर ने कुत्ते को लहूलुहान कर दिया पर कुत्तों ने भी शेर के छक्के छुड़ा दिए। शेष दो कुत्ते भी छोड़ दिए गए और तब शेर को भागते ही बना। पर कुत्तों ने उसके शरीर में ऐसे दाँत चुभाए कि शेर आहत होकर वहीं गिर पड़ा। अश्वपति ने ललकार कर कहा—"महाराज! आपकी सेना में कोई वीर है जो कुत्ते के दाँत शेर के मांस से अलग कर दे।" बारी-बारी से कई योद्धा उठे और कुत्तों की टाँगे पकड़ कर खींचने लगे, कुत्तों की टाँगें टूट गईं पर वे उनके दाँत छुड़ा न सके। सात फुट लंबे अश्वपति ने अपने अंगरक्षक को संकेत किया। वह उठकर शेर के पास पहुँचा और कुत्ते को पकड़ कर एक ही झटका लगाया कि शेर की हड्डी और मांस सहित कुत्ता भी खिंच गया।

सिकंदर ने युद्ध जीत लिया था पर इस यथार्थता के आगे वह अपना सिर झुकाए बैठा था।

शुभ कार्य तत्काल करो

कोई स्त्री अपने पिता के यहाँ से लौटी थी, अपने पति से कह रही थी—"मेरा भाई विरक्त हो गया है। वह अगली दीवाली पर दीक्षा लेकर साधु होने वाला है। अभी से उसने तैयारी प्रारंभ कर दी है। वह अपनी संपत्ति की उचित व्यवस्था करने में लगा है।"

पत्नी की बात सुनकर पति मुसकराया। स्त्री ने पूछा—"तुम हँसे क्यों? हँसने की क्या बात थी।"

पति बोला—"और तो सब ठीक है, किंतु तुम्हारे भाई का वैराग्य मुझे बहुत अद्भुत लगा। वैराग्य हो गया है दीक्षा लेने की तिथि

अभी निश्चित हुई है और वह संपत्ति की उचित व्यवस्था में लगा है।" भौतिक संपत्ति में बुद्धि और इस उत्तम काम में भी इतनी दूर की योजना! इस प्रकार की तैयारी करके त्याग नहीं हुआ करता। त्याग तो सहज ही हुआ करता है।

स्त्री को बुरा लगा वह बोली—"ऐसे ज्ञानी हो तो तुम्हीं क्यों कुछ कर नहीं दिखाते।"

"मैं तो तुम्हारी अनुमति की ही प्रतीक्षा में था।" पुरुष ने वस्त्र उतार दिए और एक धोती मात्र पहने घर से निकल पड़ा। स्त्री ने समझा कि यह परिहास है। थोड़ी देर में उसका पति लौट आवेगा, परंतु वह तो लौटने के लिए गया ही नहीं था। सच है वैराग्य के लिए कोई तिथि नहीं सोची जाती।

मेरी का उपहार

'मेरी' का पति बहुत निर्धन था पर पति-पत्नी में अगाध प्रेम, अविचल निष्ठा, असीम पवित्रता थी।

वह प्रति वर्ष अपने विवाह की जयंती मनाया करते थे। उस दिन अपने विगत जीवन के कर्त्तव्य-पालन पर संतोष, प्रसन्नता और परस्पर कृतज्ञता व्यक्त करते थे। भूलों की क्षमा माँगते थे और आगे के लिए और भी सचेष्ट कर्त्तव्य पालन की प्रतिज्ञा लेते थे।

यह पहला ही विवाह दिवसोत्सव था, जब उनके पास एकदूसरे को देने के लिए कुछ नहीं था। मेरी के बाल बड़े सुंदर थे पर उन्हें सँवारने के लिए कंघा न था। पति के पास घड़ी थी पर उसकी चेन न थी। दोनों एकदूसरे को उपहार देना चाहते थे, पर क्या दें, यह दोनों की हैरानी थी।

दोनों बाजार गए। चुपचाप, अलग-अलग। मेरी ने अपने सुंदर बाल कटवाकर बेच दिए, उनसे जो पैसा मिला पति के लिए घड़ी की चेन खरीद ली। पति ने अपनी घड़ी बेच दी और उससे मेरी के लिए कंघी खरीदी। दोनों नियत समय पर अपने-अपने उपहार लिए घर पहुँचे।

पर यह देखकर दोनों थोड़ी देर के लिए दुःखित हो गए कि जिस घड़ी के लिए चेन आई वह भी बिक गई, जिन बालों के लिए कंघी आई वह भी कट गए। थोड़ी देर तक दोनों दुखी रहे पर दोनों ने एक दूसरे के प्रति अपनी प्रेम-भावना को याद किया तो उनका हृदय गद्‌गद हो उठा।

इस तरह का निश्छल और निष्काम प्रेम जहाँ भी होता है, वहीं ईश्वरीय सत्ता का वास्तविक संपर्क दिखाई देता है। प्रेम की सार्थकता निष्काम भावना में ही है।

सच्चा प्रजासेवक

हजरत अबूबकर का विश्वास था कि निर्धन से निर्धन नागरिक को जीवनयापन के लिए जितनी सुविधाएँ उपलब्ध हैं उससे अधिक सुविधाएँ लेने का अधिकार राज्य के किसी उच्च कर्मचारी को नहीं है। इसलिए राज्य के कोषालय से अपने खरच के लिए वे केवल दो दिरहम लेते थे।

हजरत की इस जान-बूझकर बुलाई गई निर्धनता से उनकी पत्नी तंग आ गई थी। उन्हें यह बिलकुल पसंद न था कि जिस व्यक्ति का पूरे राज्य में सम्मान हो उसकी पत्नी गरीबी और परेशानी से जीवनयापन करे। एक दिन परेशान होकर उन्होंने कह ही दिया—"यह भी कोई व्यवस्था है जब देखो तब सूखी रोटियाँ। ऐसा प्रयत्न कीजिए न, किसी दिन कुछ मिठाइयों की व्यवस्था भी हो सके तो भोजन कुछ अच्छा लगे।"

"खाना बनाने का काम तुम्हारे जिम्मे ही है। तो थोड़ा-थोड़ा बचाकर मिठाई की व्यवस्था क्यों नहीं कर लेतीं?" उनकी पत्नी ने सुझाव पर विचार किया तथा अपने दैनिक भोजन में से प्रतिदिन कुछ न कुछ बचत प्रारंभ कर दी। कुछ दिनों की निरंतर बचत से एक दिन के भोजन में मिठाई की व्यवस्था हो सके, इतनी बचत हो जाने पर उसने एक दिन बड़े उल्लास के साथ अपने पति को भोजन के साथ-साथ वह मिष्टान्न भी परोसा। पति को प्रेमपूर्वक भोजन कराकर पत्नी ने

भोजन किया। अबूबकर ने मिठाई के बारे में जानना चाहा तो उनकी पत्नी ने गर्वपूर्वक बचत की बात बताई।

बचत की बात सुनकर अबूबकर प्रसन्न हुए, उन्होंने सोचा यह देन परमपिता परमात्मा की है। ऐसा करने से जो बचत होगी, उससे भी जनता की सेवा की जा सकेगी, मेरी गरीब जनता मुझसे जितना भी लाभ उठा सकती है वह लाभ क्यों न उठाए और मैं भी शक्तिभर उनकी सेवा कर सकूँ, भगवान मुझे ऐसा साहस प्रदान करे, ऐसा सोचकर वह पत्नी से बोला—"जनता रूखा खाकर जिस-तिस प्रकार अपना पेट पालती है, रूखा-सूखा भोजन भी वह कड़ी मशक्कत करने के बाद ही पाती है, तब फिर सोचो तो हमें मिष्टान्न जैसे स्वादिष्ट भोजन का अधिकार कहाँ है।"

"फिर तो दो दिरहम की रकम हम लोगों के गुजारे के लिए अधिक है।" इतना कहकर दूसरे दिन से अबूबकर ने केवल डेढ़ दिरहम ही लेना शुरू कर दिया।

मंदबुद्धि वरदराज

संस्कृत-व्याकरण के सारभूत ग्रंथ लघुसिद्धांत कौमुदी को कौन नहीं जानता। लघुसिद्धांत कौमुदी संस्कृत व्याकरण का वह ग्रंथ है जिसका अध्ययन किए बिना संस्कृत का पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं होता और पढ़ लेने पर संस्कृत व्याकरण की योग्यता में संदेह नहीं रहता।

इस विलक्षण ग्रंथ के रचयिता श्री वरदराज जी अपने छात्र काल में वरदराज अर्थात बैलराज कहे जाते थे और एक तरह से उनका यह विकृत नाम ठीक भी था। वरदराज इतना मंदबुद्धि था कि पाठशाला में पढ़ाया हुआ एक ही अक्षर न तो समझ पाता था और न याद कर पाता था। अपनी इस मंदबुद्धिता के लिए वह अपने सहपाठियों के बीच एक मनोरंजक कुतूहल बना रहता था। और आखिर जब वह प्रारंभिक कक्षा में ही तीन-चार बार असफल हुआ तो सबने मिलकर उसका नाम वरदराज रख दिया।

एक दिन वरदराज अध्ययन की असफलता से निराश होकर घर से निकल कर चल दिया। दिनभर चलने के बाद वह संध्या समय एक गाँव के निकट एक पुराने मंदिर के चबूतरे पर पड़ा रहा। रातभर उसे नींद न आई और वह यह सोचकर रोता रहा कि भगवान ने मुझे ऐसी मंद बुद्धि दी कि मैं कुछ भी पढ़-लिख न सका। मेरा जीवन व्यर्थ है। बिना विद्या के मैं मनुष्य होकर भी एक पशु के समान ही हूँ। धिक्कार है मेरे जीवन को। जहाँ मेरे मित्र पढ़-लिखकर यश और ऐश्वर्य कमाएँगे वहाँ मैं जीविका के लिए मिट्टी ढोता या घास काटता मर जाऊँगा। न मैं धर्म का अध्ययन कर सकता हूँ और न साहित्य का रस पा सकता हूँ। इसी सोच-विचार और रोने-धोने में वरदराज की रात बीत गई। किंतु कहाँ जाए, क्या करे, यह निश्चित न कर सकने के कारण वह अभी पड़ा ही था कि सहसा उसकी दृष्टि दीवार पर चढ़ते हुए पतंगे पर पड़ी। पतंगे के पर कमजोर थे और पैरों से चलकर चढ़ रहा था।

वरदराज ने देखा कि वह पतंगा बार-बार चढ़ता और गिरता है। किंतु जितनी बार गिरता है उतनी बार फिर चढ़ता है और पहले से कुछ अधिक ऊपर जाता है। वरदराज उसका गिरना-चढ़ना देखता रहा और अंत में उसने देखा कि बीस बार गिरने के बाद वह लगनशील पतंगा अपने गंतव्य दीवार की कगार पर पहुँच ही गया। वरदराज ने इस दृश्य से शिक्षा ली और वह पूरी तत्परता और आत्मविश्वास के साथ अध्ययन में जुट गया, जिससे उसके लिए सफलता के द्वार खुलते और मिलते चले गए और वह अल्पकाल ही में संस्कृत का उद्‌भट विद्वान बन गया।

फूट विनाश का कारण

कुछ लकड़हारे लकड़ी काटने के मंतव्य से एक जंगल में घूम-घूम कर वृक्षों का निरीक्षण करने लगे। उनको ऐसा करते देखकर जंगल के वृक्ष शोक करने लगे। उनको शोक करते देखकर एक पुराने वटवृक्ष ने पूछा—"बंधुओ! तुम लोग इस प्रकार किस कारण से शोक कर रहे हो?"

वृक्षों ने कहा—"आप देख नहीं रहे हैं कि यह अनेक लकड़हारे हम सबको देखते फिर रहे थे। कुछ ही समय में यह सबको काटकर गिरा देंगे।" वटवृक्ष ने उन्हें ढाढ़स बँधाते हुए कहा—"तुम सब व्यर्थ चिंतित हो रहे हो, लकड़हारे हममें से किसी का कुछ बिगाड़ नहीं सकते।"

कुछ समय बाद लकड़हारों ने जंगल में अपने तंबू लगा लिए और काटने की योजना बनाने लगे। वृक्ष अब और दुखी होने लगे। वटवृक्ष ने उन्हें पुनः समझाया—"तुम सब प्रसन्न रहो। हम सब इतने मजबूत हैं कि इनकी योजना कदापि सफल नहीं हो सकती।" वटवृक्ष की बात सुन कर वृक्षों की चिंता जाती रही। किंतु जब एक दिन बहुत सी लोहे की कुल्हाड़ियाँ बनकर आ गईं तो बेचारे वृक्ष वटवृक्ष को भला-बुरा कहने लगे। वे बोले—"आप तो कह रहे थे कि ये लकड़हारे अपनी योजना में सफल नहीं हो सकते। किंतु यह तो दिन-दिन हम सबको काटने का उपक्रम करते ही जा रहे हैं। अब तो लोहे की कुल्हाड़ियाँ भी बनकर आ गईं। अब हममें से किसी की खैरियत नहीं है।"

वटवृक्ष ने फिर कहा—"इतनी ही नहीं, इससे चार गुनी कुल्हाड़ियाँ बनकर क्यों न आएँ और इतने ही लकड़हारे इकट्ठे हो जाएँ तब भी हममें से किसी का बाल बाँका नहीं कर सकते।" किंतु एक दिन जब कुल्हाड़ियों में लकड़ी के बेंट पड़ गए तो अन्य वृक्षों के कुछ कहने से पहले ही वटवृक्ष बोला—"भाइयो! अब हम सबको इस सृष्टि के रचयिता ब्रह्मा भी नहीं बचा सकते हम सब काट डाले जाएँगे।"

जंगल के सारे वृक्ष बरगद से कहने लगे—"जब हम सब कटने की बात कहते थे तब आप हमको मूर्ख समझते थे और विश्वास दिलाते थे कि ये लकड़हारे हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। पर अब क्या बात हो गई जो आप स्वयं ही निराशा की बात करने लगे!" वटवृक्ष ने गंभीरता से उत्तर दिया—"तब तक केवल लकड़हारे और कुल्हाड़ी एक दूसरे के सहायक थे इसलिए हमको कोई खतरा नहीं था। किंतु

अब देखो न कि हमारे ही कुल का काष्ठ लकड़हारों की कुल्हाड़ी का बेंट बनकर हमारे विनाश में सहायक हो रहा है। जब तक अपना ही कोई व्यक्ति विश्वासघात कर के शत्रुओं से नहीं मिल जाता तब तक किसी बात का खतरा नहीं रहता। किंतु जब अपना ही कोई व्यक्ति शत्रु का सहायक बन जाता है तब विनाश से बच सकना असंभव हो जाता है।'' वटवृक्ष की बात ठीक निकली। दूसरे ही दिन से लकड़हारों ने वृक्षों पर कुल्हाड़ी बजाना शुरू कर दिया और कुछ ही समय में जंगल को काटकर नीचे गिरा दिया।

अमरत्व से श्रेष्ठ सदाचार

बलाधि ऋषि के नवजात शिशु की मृत्यु हो गई। उससे वे बहुत व्याकुल हो उठे। उन्होंने देवराज की उपासना कर एक अमर पुत्र प्राप्त करने का निश्चय किया।

बलाधि ने तपस्या आरंभ की। तप शक्ति से उन्होंने देवराज को प्रभावित कर लिया। इंद्रदेव प्रकट हुए और वर माँगने को कहा। बलाधि ने कहा—''देव मुझे एक ऐसा पुत्र दीजिए जिसकी देह कभी क्षय न हो।''

देवराज ने कहा—''मनुष्य देह का अमर होना तो संभव नहीं है, आप कोई दूसरा वर माँगो।''.....कुछ सोचकर ऋषि ने कहा—''तो फिर आप यह वरदान दीजिए कि वह सामने जो पहाड़ है जब तक अचल खड़ा है तब तक मेरे पुत्र की मृत्यु न हो।''

एवमस्तु! कहकर इंद्र प्रसन्नतापूर्वक चले गए। इधर समय पाकर बलाधि को पुत्र प्राप्त हुआ। उसका नाम मेधावी रखा गया। मेधावी को बाल्यावस्था से ही यह अहंकार हो गया कि उसे कोई नहीं मार सकता, फलस्वरूप वह जहाँ भी जाता ढिठाई करता। किसी से न डरता। जो जी में आता वही करता।

बलाधि ने एक दिन अपने पुत्र को बुलाकर समझाया—''वत्स! विद्या, धन, रूप, शक्ति और देवकृपा का अहंकार नहीं करना चाहिए।

अहंकार ही मनुष्य के पतन और सर्वनाश का कारण है। मुझे मिले वरदान का चिरसुख चाहो तो अहंकार करना छोड़ दो।" मेधावी को पिता की बात पर बड़ा गुस्सा आया। उन्हें दुर्वचन कहकर वहाँ से चल दिया। उधर ऋषि धनुषाक्ष से भेंट हो गई। उसने उन्हें भी अपशब्द कह डाले। ऋषि धनुषाक्ष ने उसे शाप दे दिया—"तुम्हारी तत्काल मृत्यु हो जाए।" किंतु आश्चर्य! ऋषि का शाप निरर्थक गया। मेधावी उद्धत हँसी हँसता हुआ जीवित ही खड़ा रहा। ऋषि को वरदान की बात याद आई उन्होंने तुरंत भैंसे का रूप धारण कर सीगों से पहाड़ को ढहा दिया। उसके गिरते ही मेधावी भी वहीं धराशायी हो गया।

ऋषि बलाधि बहुत दुखी हुए। उन्होंने समाचार सुना तो बोल उठे—"अमर पुत्र प्राप्त करने की अपेक्षा शांत, सरल और सद्गुणी बालक होता तो अल्पायु में ही वह कहीं अधिक सुख देता।"

अतिथि देवो भव

शकंभर राज्य का मौरका गाँव, दस्युओं और अपराधियों का गढ़ समझा जाता था। अपने प्राचीन इतिहास में इस गाँव ने हत्या, डाकेजनी, छीना-झपटी, चोरी, बदमाशी के अतिरिक्त कोई धर्म-कर्म के दृश्य न देखे थे। अच्छे आदमी वहाँ जाने से भी डरते थे।

एक दिन मना करने के बाद भी आचार्य पुननर्वा के प्रिय शिष्य जातबंध धर्म-प्रसार के लिए मौरका पहुँच गए। जातबंध गुरुकुल से निकला सद्यस्नातक था। उसकी आयु कोई २५ से अधिक न थी। पर उसे धर्म की शक्ति पर पूरा भरोसा था। जातबंध दुष्टता को प्रेम और आत्मीयता से जीतने की कला में बड़ा पटु था। ग्राम-प्रवेश करते ही उसे कुछ नवयुवकों ने पकड़ लिया और दस्युराज सूरसेन के पास ले गए। सूरसेन बड़ा नास्तिक और क्रूर व्यक्ति था। उसने कड़क कर पूछा—"युवक तुम यहाँ किसलिए आए हो, राज्याध्यक्ष के गुप्तचर लगते हो, साफ-साफ बताओ अन्यथा सिर धड़ से अलग कर दिया जाएगा।" जातबंध ने कोई उत्तर न दिया। केवल उसकी हिंसक आँखों

की ओर प्यार और कोमल दृष्टि से देखता रहा। कोई उत्तर न पाकर सूरसेन की क्रोधाग्नि भभक उठी। उसने आज्ञा दी इसे खंभे से बाँध दो और जब तक प्राण न निकल जाएँ इसे कुछ खाने-पीने को मत दो।

एक दिन एक रात उसी स्थिति में बँधे जातबंध को आश्वस्त किया सूरसेन की पुत्री वारिजाता ने, किंतु जैसे ही वह भोजन लेकर वहाँ पहुँची सूरसेन स्वयं वहाँ आ पहुँचा। उसने कड़क कर कहा— "लड़की तू यहाँ से हट, मैं इसका सर अभी काटकर अलग किए देता हूँ।" किंतु वारिजाता सामने आ गई और बोली—"पिताजी! अतिथि पर हाथ उठाना पाप है।" सूरसेन ने तलवार उठाई कि वारिजाता फिर सामने आ गई और बोली—"जब तक आप मुझे नहीं मार देते आपको आगे न बढ़ने दूँगी।" उठा हुआ हाथ वहीं रुक गया। पुत्री मृत्यु का स्मरण करुणा बनकर फूटा और उसने सूरसेन का हृदय परिवर्तित कर दिया। उसकी दुष्प्रवृत्ति श्रद्धा में बदल गई और एक दिन यही गाँव राज्य का सर्वश्रेष्ठ नगर घोषित हुआ।

शक्ति का स्रोत पतिव्रत

दशरथ और मयासुर का युद्ध हो रहा था। मायावी राक्षस से सभी राजा परास्त हो चुके थे। दशरथ को अपनी विजय में संदेह ही दिखाई दे रहा था। तब एक नारी संग्राम में उतरी। दशरथ की अर्धांगिनी कैकेयी ने सारथि का पद सँभाला। उस दिन दशरथ ने घोर संग्राम कर असुरों के छक्के छुड़ा दिए। इसी बीच रथ के एक पहिये की धुरी टूट गई, रथ ने हिलने-डुलने से जवाब दे दिया। उस समय कैकेयी ने अपनी ऊँगली पहिए में लगा दी और तब तक उस स्थिति में बनी रही जब तक उस दिन का युद्ध समाप्त नहीं हो गया। वह युद्ध कहते हैं दशरथ ने जीता था पर यदि सचाई को अभिव्यक्त होने का अवसर दिया जाए तो यह कहना पड़ेगा कि विजय पतिव्रत की विजय थी।

सुलोचना ने जीवनभर पतिव्रत की कठोर साधना द्वारा मेघनाद को वह बल प्रदान किया था कि उसके आगे देवता भी नहीं टिक सकते थे।

ऐसे अपराजेय योद्धा को मारने वाले महारथी लक्ष्मण को भी यह सौभाग्य उनकी महान पतिव्रता पत्नी उर्मिला ने ही प्रदान किया था। उर्मिला, भारतीय नारी के गौरवमय इतिहास का चंद्रमा, जिसने चौदह वर्ष तक अपने पति की अनुपस्थिति में पलक ऊपर उठाकर पुरुष के दर्शन भी नहीं किए थे। उसने राज्यभोग, आभूषण और स्वादयुक्त भोजनों का केवल इसलिए परित्याग कर दिया था क्योंकि उसके पति वनवासी थे। ऐसी निष्ठाएँ भारतीय समाज को वह शक्ति प्रदान करती रही हैं जिनकी यश-गाथाएँ आज भी विश्व इतिहास के अंतरिक्ष में सूर्य की भाँति देदीप्यमान हैं।

आज परिस्थितियाँ कुछ बदल अवश्य गई हैं पर भावनाओं को कोई प्रतिबंध नहीं लगा। उतने त्याग और तप के लिए अवसर भले ही न हों पर सामान्य जीवन में, पारिवारिक व्यवस्था में तो स्त्री, पुरुषों को सच्चे अर्थों में सहयोग प्रदान कर ही सकती है।

अंधविश्वास की जड़

एक थे पंडित जी! नाम था सज्जनप्रसाद। सज्जन और सदाचारी भी थे और ईश्वर भक्त भी, किंतु धर्म का कोई विज्ञानसम्मत स्वरूप भी है,यह वे न जानते थे।

प्रतिदिन प्रात:काल पूजा समाप्त करके पंडित जी शंख बजाते। वह आवाज सुनते ही पड़ोस का गधा किसी गोत्रबंधु की आवाज समझकर स्वयं भी रेंक उठता। पंडित जी प्रसन्न हो उठते कि कोई पूर्व जन्म का महान तपस्वी और भक्त था। एक दिन गधा नहीं चिल्लाया, पंडित जी ने पता लगाया। मालूम हुआ कि गधा मर गया। गधे के सम्मान में उन्होंने अपना सिर घुटाया और विधिवत तर्पण किया। शाम को वे बनिए की दुकान पर गए। बनिये को शक हुआ—"महाराज! आज यह सिर घुटमुंड कैसा?" अरे भाई शंखराज की इहलीला समाप्त हो गई है।

बनिया पंडित का यजमान था, उसने भी अपना सर घुटा लिया। बात जहाँ तक फैलती गई, लोग अपने सिर घुटाते गए। छूत बड़ी

खराब होती है। एक सिपाही बनिये के यहाँ आया। उसने तमाम गाँव वालों को सर मुड़ाए देखा, पता चला शंखराज जी महाराज नहीं रहे, तो उसने भी सिर घुटाया। धीरे-धीरे सारी फौज सिर-सपाट हो गई।

अफसरों को बड़ी हैरानी हुई। उन्होंने पूछा—"भाई बात क्या हुई।" पता लगाते-लगाते पंडित जी के बयान तक पहुँचे और जब मालूम हुआ कि शंखराज कोई गधा था, तो मारे शरम के सबके चेहरे झुक गए।

एक अफसर ने सैनिकों से कहा—"ऐसे अनेक अंधविश्वास समाज में केवल इसलिए फैले हैं कि उनके मूल का ही पता नहीं है। धर्म परंपरावादी नहीं, सत्य की प्रतिष्ठा के लिए है, वह सुधार और समन्वय का मार्ग है, उसे ही मानना चाहिए।"

तैमूरलंग की कीमत

दुनिया के कट्टर और खूँखार बादशाहों में तैमूरलंग का भी नाम आता है। व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा, अहंकार और जवाहरात की तृष्णा से पीड़ित तैमूर ने एक बार विशाल भू-भाग को रौंदकर रख दिया। बगदाद में उसने एक लाख मरे हुए व्यक्तियों की खोपड़ियों का पहाड़ खड़ा कराया था। इसी बात से उसकी क्रूरता का पता चल जाता है।

एक समय की बात है बहुत से गुलाम पकड़ कर उसके सामने लाए गए। तुर्किस्तान का विख्यात कवि अहमदी भी दुर्भाग्य से पकड़ा गया। जब वह तैमूर के सामने उपस्थित हुआ तो एक विद्रूप सी हँसी हँसते हुए तैमूर ने दो गुलामों की ओर इशारा करते हुए पूछा—"सुना है कि कवि बड़े पारखी होते हैं, बता सकते हो इनकी कीमत क्या होगी?"

"इनमें से कोई भी ४ हजार अशर्फियों से कम कीमत का नहीं है।" अहमदी ने सरल किंतु स्पष्ट उत्तर दिया। "मेरी कीमत क्या होगी?" तैमूर ने अभिमान से पूछा। "यही कोई २४ अशर्फी" निश्चिंत भाव से अहमदी ने उत्तर दिया।

तैमूर क्रोध से आगबबूला हो गया। चिल्लाकर बोला—"बदमाश! इतने में तो मेरी सदरी भी नहीं बन सकती। तू यह कैसे कह सकता है कि मेरा मूल्य कुल २४ अशर्फी है।"

अहमदी ने बिना किसी आवेश या उत्तेजना के उत्तर दिया— "बस, यह कीमत उसी सदरी की है आपकी तो कुछ नहीं। जो मनुष्य पीड़ितों की सेवा नहीं कर सकता, बड़ा होकर छोटों की रक्षा नहीं कर सकता, असहायों की अनाथों की जो सेवा नहीं कर सकता, मनुष्य से बढ़कर जिसे अहमियत प्यारी हो उस इनसान का मूल्य चार कौड़ी भी नहीं, उससे अच्छे तो ये गुलाम ही हैं जो किसी के काम तो आते हैं।"

धन्य है इस न्यायप्रियता को

तक्षशिला के राजा आंभीक से स्वागत पाकर सिकंदर सुस्ताने के लिए तक्षशिला में ठहर गया। एक दिन सायंकाल वह घूमता-घूमता एक गाँव की तरफ निकल गया। वहाँ एक पंचायत हो रही थी। सिकंदर पंचों का न्याय देखने ठहर गया।

पंचायत की कार्यवाही प्रारंभ हुई। वादी बोला—"मैंने प्रतिवादी से एक खेत खरीदा। हल जोतते समय जमीन के नीचे मुझे एक सोने के सिक्कों से भरा घड़ा मिला। मैंने केवल जमीन खरीदी थी, उसके नीचे की संपत्ति नहीं। इन मुद्राओं पर प्रतिवादी का ही अधिकार है मेरा नहीं। किंतु वह मुहरें लेने से इनकार कर रहा है। कृपा कर न्याय किया जाए और प्रतिवादी से स्वर्ण मुद्राएँ लेने को कहा जाए।"

आज्ञा पाकर प्रतिवादी बोला—"मैंने जमीन बेच दी। उसमें उगने वाली फसल की तरह उसकी अंतरस्थ संपत्ति से भी मेरा कोई सरोकार नहीं। उन मुहरों पर मेरा कोई अधिकार नहीं है। वादी से कहा जाए कि वह सारा स्वर्ण अपने पास रखे।"

कोई भी पक्ष उन स्वर्ण मुद्राओं को लेने को तैयार न था। पंच बड़े असमंजस में पड़े! बड़ी देर विचार-विमर्श के बाद सरपंच ने फैसला दिया।

सरपंच बोला—"वादी के विवाह योग्य लड़की और प्रतिवादी के विवाह योग्य लड़का है। वादी अपनी लड़की का विवाह प्रतिवादी के लड़के के साथ कर दे और वह सारा स्वर्ण वर-कन्या को उनके जीवन विकास के लिए प्रदान कर दे!"

वादी-प्रतिवादी ने पंचायत का फैसला मान लिया और लड़की-लड़के का विवाह कर सारा स्वर्ण उनको दान कर दिया।

सिकंदर चुपचाप यह सारी कार्यवाही देखता रहा। भारतीयों का त्यागपूर्ण जीवन देखकर उसकी आत्मा कह उठी—"एक यह गरीब ग्रामीण जन हैं जो पाए हुए स्वर्ण को अपने पास नहीं रखना चाहते और एक तू है जो राजा होकर भी दूसरों की धन-दौलत छीनने के लिए रक्तपात करता फिर रहा है। धिक्कार है तेरे लोभ और तेरी तृष्णा को।"

विवेक की विजय

प्राचीन पंचनद का एक लकड़हारा एक दिन जंगल में गया। जैसे ही वह लकड़ी काटने को हुआ उसने देखा एक जौहड़ में सुअर का बच्चा फँस गया है। लकड़हारे ने असहाय सुअर को कीचड़ से बाहर निकाला और उसे अपने साथ घर ले आया।

उसने घर में भी कई सुअर पाल रखे थे, उन्हीं में इसे भी छोड़ दिया। घर में सुअरों में एक छोटा बच्चा था, इन दोनों में गहरी दोस्ती हो गई।

एक दिन घर वाले सुअर के बच्चे ने पूछा—"भाई! तुम जिस प्रदेश में रहते थे, वहाँ तो किसी प्रकार के साधनों का अभाव नहीं है, फिर भी तुम इतने दुबले-पतले क्यों हो?"

जंगल का सुअर दुबला था पर था समझदार। उसने कहा—"भाई! किसी के पास बहुत साधन होना ही सुख का प्रतीक नहीं है, मूल वस्तु है निर्भयता। जो शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और दैविक सभी प्रकार के भय से मुक्त हो जाता है, वही सुखी होता है। भय चाहे किसी व्यक्ति का हो या मृत्यु का सदैव ही दुःख देता है, उसके रहते न

कोई ज्ञान काम देता है, न दर्शन। मेरी स्थिति भी यही थी। वन में स्वतंत्रता अवश्य है, पर वहाँ भी शक्तिशाली द्वारा निर्बल को सताए जाने का भय सदैव बना रहा है। मैं जहाँ रहता हूँ, वहाँ एक सिंह रहता था, वह छोटे-छोटे जीवों को खा जाता था, उसी के भय ने मुझे पनपने नहीं दिया। स्वतंत्र रहकर भी उद्वेग और चिंता खाए जाती थी।''

दूसरे सुअर के बच्चे ने कहा—''मित्र! स्वच्छंदतावाद की सर्वत्र ऐसी ही दुर्गति होती है। देखो हम यहाँ कम साधनों में भी अनुशासन और सामाजिक मर्यादाओं में रहकर भी हम कितने स्वस्थ और प्रसन्न हैं।''

लेकिन उसने कुछ सोचकर अपनी बात फिर जारी कर दी— ''तुम तो बुद्धिमान हो, सिंह का संगठित मुकाबला करते तो संभवत: वहाँ भी भय-मुक्त हो सकते थे।''

दूसरे दिन उस बच्चे के सेनाधिपत्य में सुअरों के एक दल ने शेर पर आक्रमण कर दिया। शेर बहुत से सुअरों को देखकर घबरा गया और वहाँ से अन्यत्र भाग गया। शेर की माँद के पास एक बूढ़ा सियार रहता था, उसने यह दृश्य देखा तो अपनी सियारनी से बोला—''किसी ने सच ही कहा है, बुद्धि और विवेक से काम लेने वाले छोटे लोग ही संसार में सदैव निर्भय और विजयी होते हैं।''

शांति-सुख और प्रसन्नता

मिट्टी के टीले पर बैठे हुए संत अनाम अस्ताचलगामी भगवान सूर्य को बड़े ध्यान से देख रहे थे। वे देख रहे थे, किस प्रकार एक दिन महाशक्तियों का वैभव नष्ट हो जाता है।

संत अनाम इन्हीं विचारों में डूबे थे कि एक आदमी उनके समीप आया और प्रणाम कर चुपचाप खड़ा हो गया। मुसकराते हुए संत अनाम ने पूछा—''वत्स! मुझ से कुछ काम है?''

आगंतुक ने विनय की—''भगवन्! मैं पुरुदेश का धनी सेठ हूँ। तीर्थयात्रा के लिए चलने लगा तो मेरे एक मित्र ने मुझसे कहा कि आप

इतने स्थानों की यात्रा करेंगे कहीं से मेरे लिए शांति, सुख और प्रसन्नता मोल ले आना। मैंने अनेक स्थानों पर ढूँढ़ा पर यही तीन वस्तुएँ कहीं नहीं मिलीं। आपको अत्यंत शांत, सुखी और प्रसन्न देखकर ही आपके पास आया हूँ, संभव है आपके पास ही वह वस्तुएँ उपलब्ध हो जाएँ।"

संत अनाम फिर मुसकराए और अपनी कुटिया के भीतर चले गए। एक निमिष के उपरांत ही लौटकर आए और एक कागज की पुड़िया देते हुए बोले—"यह अपने मित्र को दे देना और हाँ, तब तक इसे कहीं खोलना मत।"

आगंतुक पुड़िया लेकर चला गया। मित्र ने एकांत में ले जाकर उसे खोला और उसमें रखी औषधि का सेवन करके कुछ दिन में ही सुखी, शांत और प्रसन्न हो गया। एक दिन वह धनी सज्जन मित्र के पास जाकर बोले—"मित्र! मुझे भी अपनी औषधि का कुछ अंश दे दो तो मेरा भी कल्याण हो जाए।"

मित्र ने पुड़िया खोलकर दिखाई, उसमें लिखा था—"अंत:करण में विवेक और संतोष से ही स्थायी सुख-शांति और प्रसन्नता मिलती है।"

सच्ची शांति कैसे प्राप्त हो

मिथिला नगरी के महानंद परिव्राजक ने जीवन के तीन पन कठिन तपश्चर्या में बिताए। जप, तप, आसन, प्राणायाम, स्वाध्याय, यज्ञ, कीर्तन, मार्जन, तर्पण करते-करते असंख्य सिद्धियाँ करतलगत कर लीं। असाधारण क्षमता वाले मुनि महानंद की ख्याति चंद्रमा के प्रकाश की तरह विकसित होने लगी। सैकड़ों व्यक्ति उनकी सिद्धियों का लाभ पाने लगे। सैकड़ों व्यक्ति प्रतिदिन आश्रम पहुँचते और श्री चरणों में सिर रखकर महासुख अनुभव करते। किंतु मुनि का अंत:करण स्थिर न था। सिद्धियों ने उनकी तृष्णा तो बढ़ा दी पर वह शांति, वह स्थिरता न मिली जिसके लिए मुनि ने घर, परिवार और स्नेहियों-संबंधियों का साथ छोड़ा था।

एक दिन महानंद इसी दुःख से भरे अपनी कुटिया से निकले। एक गाँव की ओर चल पड़े। गुरु चौखट में पहुँचे थे कि किसी के कराहने का स्वर सुनाई दिया। कोई बीमार था, देखने वाला कोई न था, बड़ी पीड़ा बढ़ गई थी। उस व्यक्ति की दरदभरी कराह मुनि के हृदय में उतर गई। उन्होंने बीमार की रातभर सेवा की। दवा दी, पाँव दाबे, बिस्तर बदले, टट्टी और पेशाब धोया। चौथे पहर जब उसे नींद आई मुनि आश्रम लौटे। आज न उन्होंने संध्या की न प्राणायाम और निदिध्यासन भी नहीं किया, किंतु तो भी उनके अंतःकरण में अपूर्व शांति, स्थिर उत्फुल्लता, अबाध सुख निर्झर की भाँति झर रहा था। मुनि अनायास कह उठे—"हाय रे! मैं कितना अभागा रहा जो चार पन यों ही बिता दिए। मुझे मालूम होता कि परमात्मा दीन-दुखियों की सेवा और परमार्थ का प्यासा है तो क्यों इतना समय व्यर्थ जाता।"

नरमेध

यूनान के शाह का स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन खराब होता गया। बचने के आसार नजर नहीं आ रहे थे। अंत में वहाँ के सभी हकीमों ने मिलकर यह निश्चय किया कि यदि निर्धारित लक्षणों वाले किसी व्यक्ति का पित्ताशय प्राप्त हो सके तो शाह के जीवन को बचाया जा सकता है।

शासकीय कर्मचारी निकल पड़े और दो-तीन दिन की खोज-बीन के बाद चाहे हुए लक्षणों वाले एक बालक को पकड़ लाए। निर्धन माँ बाप का वह सीधा-साधा बालक। पिता को विपुल मात्रा में धन दे दिया गया तो उसने चूँ तक न की।

काजी से इस संबंध में परामर्श लिया गया तो उन्होंने भी कह दिया कि राजा के प्राणरक्षा हेतु यदि प्रजा के किन्हीं एक-दो व्यक्तियों को अपना बलिदान भी देना पड़े तो वह अपराध की कोटि में न आएगा।

वह लड़का राजा के सम्मुख उपस्थित किया गया। सभी हकीम अपनी तैयारी के साथ आए ही थे। जल्लाद को तलवार से काम तमाम

करने की आज्ञा दे दी गई। जल्लाद ने जैसे ही तलवार उठाई कि बालक को ऊपर आकाश की ओर देखकर हँसी आ गई।

राजा को, मृत्यु के मुँह में जाते बालक को हँसते देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ, उन्होंने संकेत से उस जल्लाद को रुकने के लिए कहा। जल्लाद ने अपना हाथ नीचे कर लिया। बालक गंभीर हो गया, उसने कहा—"आज मैंने देखा कि माता-पिता जिस संतान के लिए प्राण देते हैं उन्होंने उसे पैसों के लोभ में आकर बेच दिया। काजी जो धर्म और मर्यादा की रक्षा करने वाला कहा जाता है उसने राजा को खुश करने के लिए धर्म के सिद्धांत को ही बदल दिया, और राजा के जीवन को बचाने के लिए भले ही किसी के प्राण लिए जाएँ पर धर्म उसे अपराध और पाप की दृष्टि से मान्य करने को तैयार नहीं। प्रजा का रक्षक बादशाह ही भक्षक बना जा रहा हो उस समय ईश्वर के अलावा व्यक्ति को सहारा देने वाला और हो भी कौन सकता है?"

अतः मुझे उस परमपिता की याद करके हँसी आ गई कि यहाँ तो ऐसा अँधेर मचा हुआ है देखें सब का रक्षक क्या करता है?

"मुझे क्षमा कर बेटा! अब तू निश्चिंत हो जा। जल्लाद की तलवार अब तुम्हारा कुछ न बिगाड़ सकेगी।" शाह ने अपनी भूल स्वीकार करते हुए कहा—"यूनान के शाह ने भूल स्वीकार कर ली।"

लोभ का फल

एक बार एक सेठजी का इरादा था किसी ब्राह्मण को भोजन करा दिया जाए, परंतु लोभी बहुत थे वे। एक दिन सेठजी एक गाँव वाले ब्राह्मण से बातचीत कर रहे थे तो सेठजी ने उनसे पूछा—"महाराज आप कितना खाते होंगे?" महाराज बोले—"लगभग एक छटांक।" यह सुनकर लालाजी ने उन्हें न्योता दे दिया और कहा—"मैं तो कल सौदा तुलाने जाऊँगा आप घर जाकर भोजन कर आवें।" यही बात सेठजी ने सेठानी से घर आकर कही कि मैं तो कल सौदा तुलाने जाऊँगा, ब्राह्मण जीमने आए तो जो वह माँगे दे देना। सेठजी ने सोचा, पंडितजी एक

छटांक ही तो खाते हैं, तो वे ज्यादा तो ले नहीं जाएँगे। दूसरे दिन ब्राह्मण भोजन करने आए, तो आते ही सेठानी को आशीर्वाद दिया। उसने पंडितजी की बड़ी आवभगत की। पंडितजी से आते ही पूछा—"कहिए पंडितजी आपको क्या-क्या चाहिए।" पंडितजी ने मौका अच्छा जानकर आटा १० मन, चावल चार मन, दो मन शक्कर, एक मन घी,पाँच सेर नमक और दो सेर मसाला लिया और घर भिजवा दिया, फिर भोजन करके दक्षिणा में दो सौ अशर्फियाँ लेकर घर आ गए। और आते ही घर पर ओढ़ कर लेट रहे और ब्राह्मणी से बोले—"अगर सेठजी आवें तो तू रोने लगना और कहना जब से आपके यहाँ से आए हैं तब से बहुत सख्त बीमार हैं।" इधर सेठजी बाहर से हारे-थके, भूखे-प्यासे घर आए। सेठानी से पूछा—"ब्राह्मण जी भोजन कर गए?" सेठानी ने सारा सामान बता दिया तथा दक्षिणा देने की भी बात बताई। सेठ सुनकर मूर्च्छित हो गया। होश आने पर वह ब्राह्मण के घर गया। उसे देखते ही ब्राह्मणी रोने लगी और बोली—"उनकी तो जब से आपके यहाँ से भोजन करके आए हैं, न जाने क्या हो गया है? सख्त बीमार हैं। बचने की कोई आशा नहीं।" यह सुनकर सेठजी बड़े घबराए। सेठजी ब्राह्मणी के हाथ जोड़ कर बोले—"चिल्लाओ मत हम तुम्हें दो सौ रुपए और देते हैं, तुम उनकी दवा करो, पर यह न कहना कि सेठ जी के घर खाने गए थे।" ठीक है, अत्यंत लोभ करने का यही फल है।

श्रद्धाभाव से सब कुछ प्राप्ति

बहुत दिन हुए एक व्यापारी गुजरात में जाकर व्यापार करने लगा। उसने अपने पुत्र को नालंदा विश्वविद्यालय में पढ़ने भेजा। कुछ दिनों में उसकी पत्नी की मृत्यु हो गई। उसके दुःख में उसने भी प्राण त्याग दिए। मरने से पूर्व उसने सारी संपत्ति अपने पुत्र के नाम कर दी और उसके पास समाचार भेज दिया तथा तब तक व्यवस्था एक न्यायाधीश को सौंप दी।

समाचार प्राप्त होते ही वह व्याकुल होकर घर की ओर चला। मार्ग में उसे एक अन्य बालक मिला। सहानुभूति दिखाते हुए उसने

उसके उत्तराधिकारी होने तथा परिवार में अकेला होने का सारा भेद मालूम कर लिया और उसके साथ हो लिया। दोनों में गाढ़ी मित्रता हो गई। किंतु घर पहुँचते ही अशोक के साथ वह भी रोने लगा, अपने को उत्तराधिकारी कहने लगा। न्यायाधीश चकराया, उसने व्यापारी के पुत्र को पहचानने की एक युक्ति निकाली। उसने व्यापारी का एक चित्र मँगवाकर, उसकी छाती की ओर इशारा करते हुए एक-एक तीरकमान उनके हाथ में देकर निशाना लगाने को कहा। यह भी कहा जो ठीक निशाना लगाएगा, वही उत्तराधिकारी माना जाएगा। अशोक के साथी ने तो तीर ठीक निशाने पर छोड़ दिया। परंतु अशोक उन्हें फेंक कर फोटो से लिपट गया। उसे देखकर उसके दिल में पिता के प्रति श्रद्धाभाव जाग्रत हो गया। अशोक ने न्यायाधीश से संपत्ति उसे ही दे देने को कहा तथा अपने लिए पिता की निशानी माँगी। न्यायाधीश ने समझकर कि असली उत्तराधिकारी कौन है, उसे उत्तराधिकारी घोषित किया और साथी को जेल भेज दिया। इस प्रकार के त्याग और श्रद्धाभाव से उसे सर्वस्व प्राप्ति हो गई।

विनाश के कारण सांसारिक आकर्षण

कालिंदी में स्नान करने के बाद महापंडित कौत्स भगवती ऊषा का वंदन कर रहे थे। एक घड़ियाल उन्हें काफी दूर से ताक रहा था किंतु कौत्स ऐसी ऊँची और सुदृढ़ शिला पर बैठे थे कि घड़ियाल वहाँ तक पहुँच भी नहीं सकता था।

निदान उसने युक्ति से काम लिया। यमुना की तलहटी से रत्नों का ढेर उठाकर उसने ऊपर की ओर उछाला। मोतियों का ढेर कौत्स के आस-पास जाकर बिखर गया। कौत्स ने चारों ओर बिखरे मोती और मणि मुक्ताएँ देखीं तो अंतःकरण में छिपा उनका लोभ जाग पड़ा। मन में विलासितापूर्ण जीवन के चित्र बनने लग गए। कोई और न आ जाए इस भय से कौत्स जल्दी-जल्दी वह रत्न बीनकर अपने उत्तरीय वस्त्र में बाँधने लगे।

घड़ियाल को अवसर मिल गया। जल से ऊपर शीश निकाल कर उसने कहा—"आचार्य श्रेष्ठ! आपके दर्शन कर कृतकृत्य हो गया। यह तो मेरी तुच्छ भेंट थी। आपको जल्दी न हो तो आप मुझे त्रिवेणी तक पहुँचा दें। मैं वहाँ का रास्ता नहीं जानता। यदि इस पुण्य कार्य में आप मेरी मदद करें तो मैं इन तुच्छ मोतियों से भी बढ़कर पाँच मुक्ताहार दे सकता हूँ।"

कौत्स के हर्ष का ठिकाना न रहा। उन्होंने घड़ियाल का प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लिया। उसे त्रिवेणी तक ले चलने को सहमत हो गए। क्षणिक लोभ और लालच ने उसका विवेक ही नष्ट कर दिया। घड़ियाल ने उन्हें सादर पीठ पर बैठाया और वहाँ के लिए चल पड़ा। अभी वह सौ गज चलकर बीच धार में पहुँचा ही था कि उसे हँसी आ गई। घड़ियाल को हँसते देखकर कौत्स ठिठके और पूछा—"तात! असमय आपकी हँसी का रहस्य क्या है?"

घड़ियाल एक बार वीभत्स हँसी हँसा और फिर दार्शनिक की सी मुद्रा बनाकर बोला—"आचार्यवर! आप जीवनभर दूसरों को उपदेश देते रहे कि विनाश सांसारिक आकर्षण के रूप में आता है, क्षणिक तुष्टि भी प्रदान करता है, पर एक बार मनुष्य को अपने शिकंजे में पा जाने वाली वासनाएँ मनुष्य को वहाँ ले जाती हैं जहाँ सिवाय विनाश के कुछ नहीं होता। दूसरों को उपदेश देने के बावजूद भी तुम तथ्य न समझ सके और आज एक लाल ने ही तुम्हें सर्वनाश के पास पहुँचा दिया।" यह कहकर उसने कौत्स को उछाला और एक ही क्षण में उदरस्थ कर लिया।

सच है सांसारिक आकर्षणों में जो अडिग नहीं रह सकता वासनाएँ उसे उसी तरह खा जाती हैं जैसे कौत्स को घड़ियाल ने धोखा देकर चट कर लिया।

परोपकार के लिए आत्म-बलिदान

संसार में न जाने कितने ऐसे परोपकारी हो गए हैं, हो रहे हैं और आगे भी होते रहेंगे जिन्होंने किसी कीर्ति, ख्याति, लोभ अथवा लाभ के

लिए नहीं बल्कि मनुष्यता की उदात्त भावना से प्रेरित होकर स्वांत: सुखाय मानव कल्याण के लिए अपार कष्ट सहा, सह रहे हैं और सहते रहेंगे। इतिहास के खुले पन्नों में लिखे हुए महान पुरुषों की अपेक्षा ऐसे बेनाम उपकारी अधिक महान हैं, इसमें संदेह नहीं। ऐसे ही अनेक गुमनाम-धाम उपकारियों ने अपनी अमूल्य सेवाओं से पनामा नहर के बनते समय मानवता को उपकृत किया था।

एक द्वीप से दूसरे द्वीप और एक देश से दूसरे देश का संपर्क स्थापित करने के लिए जलमार्ग पनामा नहर का निर्माण हो रहा था। उन दिनों वहाँ अनेक भयंकर रोगों का प्रकोप था जिनमें से मलेरिया का रोग तो महामारी की तरह फैला हुआ था और इस रोग को साधारण रोग नहीं असाध्य रोग समझा जाता था। एक बार जिसको यह रोग पकड़ लेता था, उसे या तो समाप्त करके छोड़ता था अथवा इतना कमजोर कर देता था कि वह किसी काम के योग्य न रहता था।

मलेरिया का यह भयंकर रोग पनामा नहर पर काम करने वाले सैकड़ों-हजारों मजदूरों में फैल गया जिससे जाने कितने मजदूर मर गए और कितने बुरी तरह बीमार पड़ गए। बड़ा हाहाकार मच गया। ऐसा लगने लगा कि इस रोग के कारण न केवल पनामा का निर्माण ही रुक जाएगा बल्कि अगणित मनुष्यों का संहार हो जाएगा।

उपचार करने वाले उपचार करने में लग गए और डॉक्टर मलेरिया को समूल नष्ट करने के उपायों में जुट गए। इस रोग के समूल विनाश के लिए डॉक्टरों को कठिन प्रयोग की आवश्यकता पड़ी। उन्होंने कहा कि यदि हमको कुछ ऐसे आदमी मिल जाएँ जिनके शरीर में मलेरिया के कीटाणुओं को प्रवेश कराकर उनकी प्रक्रिया एवं प्रतिक्रिया का अध्ययन किया जा सके तो संभव है कि हम लोग मलेरिया के समूल विनाश के उपाय खोज निकालें।

कठिन कार्य था, मलेरिया के कष्ट से लोग परिचित थे। तब भी क्या किसी कष्ट के भय से मानव कल्याण के इतने बड़े काम को अधूरा रहने दिया जाता। निदान अनेक ऐसे आदमी आगे आए जिन्होंने अपने

स्वस्थ शरीर में मलेरिया के कीटाणु प्रवेश कराकर डॉक्टरों को उपचारक उपाय खोज निकालने में सहायता दी, किंतु जिनका आज तक संसार को पता नहीं लग सका।

विद्या से विनय

महर्षि आरुणि के पुत्र श्वेतकेतु ने गुरुकुल में रहकर लगन के साथ विद्याध्ययन किया। साथ ही गुरु-सेवा से उनके कृपापात्र भी बन गए। यद्यपि गुरु को अपने सभी शिष्य प्रिय थे तथापि अपने सेवा बल से श्वेतकेतु ने विशेषता प्राप्त कर ली थी। गुरु की कृपा से जहाँ उन्होंने शीघ्र ही चारों वेदों का अखंड ज्ञान प्राप्त कर लिया था, वहाँ गुरु की प्रशंसा और प्रियता के कारण उनमें कुछ अहंकार भी आ गया था। अपने पांडित्य के अभिमान में गुरु के सिवाय अन्य किसी का आदर करना ही भूल गए।

निदान श्वेतकेतु जब गुरु का आशीर्वाद और चारों वेदों का संपूर्ण ज्ञान लेकर घर आए तो अहंकारवश पिता को भी प्रणाम नहीं किया। उनके पिता महर्षि आरुणि को इसका बड़ा दुःख हुआ। दुःख इसलिए नहीं कि वे पुत्र के प्रणाम के भूखे थे और श्वेतकेतु ने उन्हें प्रणाम नहीं किया वरन दुःख इसलिए हुआ कि पुत्र एक लंबी अवधि के बाद जहाँ ज्ञानी वहाँ अभिमानी भी होकर आया है।

महर्षि आरुणि पुत्र की इस वृत्ति से चिंतित हो उठे। क्योंकि वे जानते थे कि जिस विद्या के साथ विनय नहीं रहती वह न तो फलीभूत होती है और न आगे विकसित! उन्होंने पुत्र के हित में उसका यह विकार दूर करने के मंतव्य से व्यंगपूर्वक कहा—"ऋषिवर! आपने ऐसी कौन ज्ञान की गूढ़ पुस्तक पढ़ ली है जो गुरुजनों का आदर तक करना भूल गए। मानता हूँ आप बहुत बड़े विद्वान हो गए। चारों वेदों का ज्ञान आपने प्राप्त कर लिया है, किंतु इसके साथ यह भी जानते होंगे कि विद्या का सच्चा स्वरूप विनय है। जब आप वही न सीख पाए तो विद्वान कैसे?"

पिता की बात सुनकर श्वेतकेतु ने अपनी भूल अनुभव की और लज्जित होकर पिता के चरणों में गिर गए। महर्षि आरुणि ने श्वेतकेतु

को उठाकर छाती से लगा लिया और कहा—"अभिमान तुम्हें नहीं, अपने पुत्र की विद्वता पर अभिमान तो मुझे होना चाहिए था।"

आज के पुण्य कल की प्राप्ति

एक बार एक व्यक्ति ने अपना सर्वस्व परोपकार में लगाकर संन्यास ग्रहण किया। वह सभी प्रकार से ईश्वर में शरणागत हो गया। इसके कारण उसके योग क्षेम का भार स्वयं उठाने के लिए भगवान को सहर्ष बाध्य होना पड़ा। उसके लिए एक देवदूत एक थाली में बड़े सुस्वादु भोजन लाता था और उसे कराकर लौट जाता था। यह देख एक अन्य व्यक्ति भी अपना सब कारोबार लड़कों को सौंपकर, गेरुआ वस्त्र पहन कर उसी के निकट तप करने लगा।

अब देवदूत दो थाली लाने लगा, एक में सूखी रोटी तथा दूसरी में वही सुस्वादु भोजन। दूसरे व्यक्ति ने लगातार सूखी रोटी आते देख कहा—"मुझे ही क्यों यह सूखी रोटी मिल रही हैं।" देवदूत ने उत्तर दिया—"भगवन्! यह फल तो संचित पुण्य के अनुसार मिल रहा है। उसने पुण्य में सर्वस्व लगा दिया और आपने जीवनभर में केवल एक बार बड़े अहंकार से एक व्यक्ति को सूखी रोटी दी थी उसी के ब्याज स्वरूप यह रोटियाँ मिल रही हैं। अब आपकी सूखी रोटी भी समाप्त होने को है, फिर कुछ न मिलेगा।"

अब इस व्यक्ति को चेतना हुई और उसने अपनी बाकी बची रोटी देवदूत से मँगाकर दान कर दी और आप भूखा रहा। दूसरे दिन जब देवदूत भोजन लेकर आया तो दोनों थाली सुस्वादु पकवानों से भरी थीं।

सच्चा ज्ञान

एक बार एक नाव में बैठा कोई गणितज्ञ यात्रा कर रहा था। दोनों ही अकेले थे, यात्री तथा माँझी। सो समय काटने तथा अपनी विद्वता की धाक जमाने की दृष्टि से गणितज्ञ महोदय बोले—"क्या तुमने गणित पढ़ा है?"

माँझी बोला—"नहीं बाबू गणित का तो मैं नाम भी नहीं जानता।"

कुछ उपेक्षा भरे स्वर में गणितज्ञ ने कहा—"तब तो तुम्हारी चार आने भर जिंदगी बेकार चली गई।" कुछ देर मौन रहने के पश्चात फिर गणितज्ञ ने प्रश्न किया—"अच्छा तुमने भूगोल तो पढ़ा ही होगा कभी ?"

माँझी ने विनम्र स्वर में पुनः उत्तर दिया—"नहीं बाबूजी भूगोल का क्या मतलब होता है मैं नहीं जानता।"

सुनकर गणितज्ञ महोदय बोले—"तब तुम्हारी चार आने भर जिंदगी और यूँ ही चली गई।"

माँझी को झुँझलाहट तो बहुत हुई इन बेढंगे प्रश्नों पर लेकिन वह चुप ही रहा। कुछ देर पश्चात ही दैवयोग से जोर की आँधी आई और नाव लड़खड़ाने लगी। उछलती लहरें मतवाले पवन के झकोरे ले रही थीं। नाव सँभालते हुए नाविक ने कहा बाबू साहब—"आपको तैरना आता है ?"

गणितज्ञ ने घबराकर कहा—"नहीं तो! मैंने तो कभी तैरना नहीं सीखा।" अब नाविक कुछ मुसकराते हुए कहने लगा—"गणित तथा भूगोल न सीखने के कारण मेरी तो आठ आने भर जिंदगी बेकार गई। पर तैरना न जानने के अभाव में आपकी तो पूरी ही जिंदगी यों ही चली जा रही है। नाव का पार लगना मुश्किल है।"

गणितज्ञ सोचने लगा कि ज्ञान की उपयोगिता प्रत्येक के लिए अपनी परिस्थिति, समय तथा उपयोगिता के आधार पर ही होती है। जो समय पर काम आ जाए वही सच्चा ज्ञान है।

पहले पात्रता तब दीक्षा

एक बार एक धनी वणिक ने एक महात्मा से दीक्षा देने का अनुरोध किया। साधु ने बात टालने का प्रयत्न किया किंतु वणिक ने पाँव पकड़ लिए। अंत में साधु कुछ समय बाद आकर दीक्षा देने का वचन देकर चला गया।

पाँच पखवारे बाद महात्मा उसी वणिक के द्वार पर आए और भिक्षा के लिए आवाज लगाई। वणिक ने स्वर पहचान लिया और एक से एक बढ़कर पकवानों से थाली सजाकर ले आया। उसे आशा थी कि संत इस बार दीक्षा अवश्य देंगे।

साधु ने अपना कमंडल आगे करते हुए कहा कि भोजन इसी में डाल दो। वणिक ने देखा कमंडल में न जाने कूड़ा-कर्कट आदि क्या-क्या गंदगी भरी हुई थी। उसने साधु से कहा—"महात्मन्! आपका कमंडल तो बहुत ही गंदा है, उसमें भोजन अशुद्ध एवं अभोज्य हो जाएगा।"

साधू ने तुरंत उत्तर दिया—"कमंडल की गंदगी से जिस प्रकार भोजन अशुद्ध हो जाएगा, इसी प्रकार विषय-विकारों से मलिन अंतःकरण में दीक्षा अशुद्ध हो जाएगी। उसका कोई फल न निकलेगा।"

वणिक ने संत का आशय समझकर प्रणाम किया और कहा—"महाराज! मुझे अभी दीक्षा की आवश्यकता नहीं है। पहले पात्रता उत्पन्न करूँगा तब दीक्षा की इच्छा।"

सफलता का श्रेय

सफलता का श्रेय किसे मिले इस प्रश्न पर एक दिन विवाद उठ खड़ा हुआ। 'संकल्प' ने अपने को, 'बल' ने अपने को और 'बुद्धि' ने अपने को अधिक महत्त्वपूर्ण बताया। तीनों अपनी-अपनी बात पर अड़े हुए थे। अंत में तय हुआ कि 'विवेक' को पंच बना इस झगड़े का फैसला कराया जाए।

तीनों को साथ लेकर विवेक चल पड़ा। उसने एक हाथ में लोहे की टेढ़ी कील ली और दूसरे में हथौड़ा। चलते-चलते वे लोग ऐसे स्थान पर पहुँचे जहाँ एक सुंदर बालक खेल रहा था। विवेक ने बालक से कहा—"बेटा, इस टेढ़ी कील को अगर तुम हथौड़ा से ठोंक कर सीधी कर दो तो मैं तुमको भरपेट मिठाई और खिलौने से भरी एक पिटारी भी दूँ।"

बालक की आँखें चमक उठीं। वह बड़ी आशा और उत्साह से प्रयत्न करने लगा। पर कील को सीधा कर सकना तो दूर उससे हथौड़ा उठा तक नहीं। भारी औजार उठाने के लायक उसके हाथों में बल नहीं था। बहुत प्रयत्न करने पर सफलता न मिली तो बालक खिन्न होकर चला गया। इससे उन लोगों ने यह निष्कर्ष निकाला कि सफलता प्राप्त करने को अकेला 'संकल्प' अपर्याप्त है।

चारों आगे बढ़े तो थोड़ी दूर जाने पर एक श्रमिक दिखाई दिया। वह खर्राटे लेता हुआ सो रहा था। विवेक ने उसे झकझोर कर जगाया और कहा—"इस कील को हथौड़ा मारकर सीधा कर दो मैं तुम्हें दस रुपया दूँगा।" उनींदी आँखों से श्रमिक ने कुछ प्रयत्न भी किया, पर वह नींद की खुमारी में बना रहा। उसने हथौड़ा एक ओर रख दिया और वहीं लेट फिर खर्राटे भरने लगा।

निष्कर्ष निकला कि अकेला 'बल' भी काफी नहीं है। सामर्थ्य रखते हुए भी संकल्प न होने से श्रमिक जब कील को सीधा न कर सका तो इसके सिवाय और क्या कहा जा सकता था।

विवेक ने कहा कि हमें लौट चलना चाहिए, क्योंकि जिस बात को हम जानना चाहते थे वह मालूम पड़ गई। संकल्प, बल और बुद्धि का सम्मिलित रूप ही सफलता का श्रेय प्राप्त कर सकता है। एकाकी रूप में आप लोग तीनों अधूरे-अपूर्ण हैं।

एक सेव का मूल्य

तुर्की में जकीर नाम के एक फकीर हुए हैं। वह आईन नदी के किनारे कुटी बनाकर रहते थे। एक दिन नदी में एक सेव बहता आ रहा था। जकीर ने उसे पकड़ लिया।

अभी उसे खाने की तैयारी कर ही रहे थे कि अंत:करण से आवाज आई—"फकीर! क्या यह तेरी संपत्ति है, क्या तूने इसे परिश्रम से पैदा किया है? यदि नहीं तो इसे खाने का तुझे क्या अधिकार?"

सेव झोले में डालकर अब फकीर उसके स्वामी की खोज में नदी के चढ़ाव की ओर चल पड़े। थोड़ी दूर पर एक सेव का बाग मिला। कुछ सेव के वृक्षों की डालें पानी को छू रही थीं, फकीर ने विश्वास किया सेव यहीं से टूटा हुआ होगा।

उन्होंने बाग के स्वामी से कहा—"यह लीजिए आपका सेव नदी में बहा जा रहा था।" उसने कहा—"भाई, मैं तो बाग का रखवाला मात्र हूँ, इसकी स्वामिनी तो बुखारा की राजकुमारी है।"

फकीर वहाँ से बुखारा के लिए रवाना हुआ। कई दिन की पैदल यात्रा के बाद वहाँ पहुँचा और वह सेव लेकर राजकुमारी जी के पास उपस्थित हुआ।

फकीर को एक सेव लेकर इस तरह आने का हाल सुनकर राजकुमारी हँसकर बोली—"अरे बाबा! इसको वहीं खा लेते, एक सेव यहाँ लाने की क्या आवश्यकता थी?"

फकीर ने कहा—"राजकुमारी जी आपकी दृष्टि में एक सेव का कुछ भी मूल्य नहीं पर इस सेव ने तो मेरा सारा धर्म, संयम और सारे जीवन की साधना नष्ट कर दी होती।"

दस अक्षरों ने महाभारत रचाया

राजसूय यज्ञ समाप्त हो चुका था, किंतु सांस्कृतिक समारोहों की अब तक हस्तिनापुर में धूम मची हुई थी।

ऐसी ही एक रात दुर्योधन नाट्यशाला से वापस लौट रहा था। मार्ग में स्फटिक का बना हुआ जल-कुंड था, चंद्रमा के प्रकाश से उसका रंग इस तरह मिलता था कि पर्याप्त प्रकाश होने पर भी उसको यह भ्रम हुआ और वह सीधा चलता चला गया और जल से भरे उस हौज में जा गिरा।

पांडवों का अंतःपुर समीप ही था। राजरानी द्रोपदी मरकत-मणि के प्रकाश में बृहदारण्यक का अध्ययन कर रही थीं। हौज में किसी के गिरने की आवाज से उनका ध्यान उधर आकर्षित हुआ तो देखा दुर्योधन गिर पड़ा है। इतने दिनों की घृणा अचानक हृदय से वाणी में उतर आई और निकल ही तो गया उनके मुख से "अंधों के अंधे ही होते हैं।"

शब्द दुर्योधन के कान तक पहुँचे। उसने इसे जातीय अपमान समझा। उसका सारा शरीर प्रतिशोध की आग में जल उठा। दुर्योधन ने वहीं प्रतिज्ञा की—"द्रोपदी को नग्न करके अपनी जंघा पर न बैठाया तो मेरा भी नाम दुर्योधन नहीं।"

इतिहास की प्रसिद्ध घटना है कि इन ६ शब्दों अथवा दस अक्षरों की प्रतिक्रिया ही थी कि जब पांडव द्यूत क्रीड़ा में द्रोपदी को भी हार

गए तो दुर्योधन ने अपनी वह प्रतिज्ञा पूरी की और उसी के कारण इतना बड़ा महाभारत रचा गया।

धूल पर धूल

कौशांबी राज्य में एक बार भयंकर अकाल पड़ा। लोग दाने-दाने के लिए मोहताज हो गए। अनाज के भाव आसमान चूमने लगे। निर्धनों की मृत्यु का ताँता बँध गया। नगर के नगर और गाँव के गाँव खाली हो गए। जो थोड़े बहुत बचे उन्होंने भी अपने प्राणों की रक्षा के लिए चोरी, ठगी, बेईमानी आदि बुरे कर्म करके धन कमाना और पेट पालना प्रारंभ कर दिया।

इसी नगर में चंपक नाम का एक ईमानदार मजदूर रहता था। उसकी धर्मपत्नी हव्या भी बड़ी ईमानदार और पतिपरायण थी। वे दिनभर कड़ी मेहनत करते, शाम को जो कुछ मिलता बच्चों को खिला देते और आप भूखे सो जाते।

पर कुछ दिनों में उन्हें भी अन्न का मिलना बंद हो गया। दोनों बच्चे अकाल देवता की भेंट चढ़ गए। एक दिन भूखा-प्यासा चंपक हव्या के साथ घर लौट रहा था। उसने रास्ते में सोने का एक कड़ा पड़ा हुआ देखा। पत्नी को कहीं उसका मोह न जाग पड़े इसलिए उसने उस कड़े के ऊपर धूल डाल दी।

भगवान इंद्र मजदूरों की इस ईमानदारी से अति प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—"जहाँ ऐसे कर्मठ और ईमानदार लोग रहते हों, वहाँ अकाल नहीं रह सकता। उस रात खूब जलवृष्टि हुई और अकाल दूर हो गया।"

सच्चा प्रजापालन

एक बार महाराजा अशोक के राज्य में अकाल पड़ा। जनता भूख तथा प्यास से त्रस्त हो उठी। राजा ने तत्काल राज्य में अन्न के भंडार खुलवा दिए। सुबह से लेने वालों का ताँता लगता और शाम तक न टूटता।

एक दिन संध्या हो गई। जब सब लेने वाले निबट गए तो एक कृशकाय बूढ़ा उठा और उसने अन्न माँगा। बाँटने वाले भी थक चुके थे

अतः उन्होंने उसे डाँटकर कहा—"कल आना आज तो अब खैरात बंद हो गई।"

तभी एक हृष्ट-पुष्ट शरीर के नवयुवक जैसा व्यक्ति आया और बाँटने वालों से बोला—"बेचारा बूढ़ा है। मैं देख रहा हूँ बड़ी देर से बैठा है यह। शरीर से दुर्बल होने के कारण सबसे पीछे रह गया है। इसे अन्न दे दो।"

उसकी वाणी में कुछ ऐसा प्रभाव था कि बाँटने वालों ने उसे अन्न दे दिया। उस नवयुवक की सहायता से उसने गठरी बाँध ली। अब उठे कैसे? तब वही युवक बोला—"लाओ, मैं ही पहुँचाए देता हूँ।" और गठरी उठाकर पीछे-पीछे चलने लगा।

बूढ़े का घर थोड़ी दूरी पर रह गया था। तभी एक सैनिक टुकड़ी उधर से गुजरी। टुकड़ी के नायक ने घोड़े पर से उतर कर गठरी ले जाने वाले का फौजी अभिवादन किया। उस व्यक्ति ने संकेत से आगे कुछ बोलने को मना कर दिया। फिर भी बूढ़े की समझ में कुछ-कुछ आ गया। वह वहीं खड़ा हो गया और कहने लगा—"आप कौन हैं, सच-सच बताइए।"

वह व्यक्ति बोला—"मैं एक नौजवान हूँ और तुम वृद्ध हो, दुर्बल हो। बस इससे अधिक परिचय व्यर्थ है। चलो बताओ तुम्हारा घर किधर है।" पर अब तक बूढ़ा पूरी तरह पहचान चुका था। वह पैरों में गिर गया और क्षमा माँगते हुए बड़ी मुश्किल से बोला—"प्रजापालक! आप सच्चे अर्थों में प्रजापालक हैं।"

जीवन का रहस्य

देवों और असुरों में घोर युद्ध हो रहा था। राक्षसों के शस्त्र बल और युद्ध कौशल के सम्मुख देवता टिक ही नहीं पाते थे। वे हार कर जान बचाने भागे, सब मिलकर महर्षि दत्तात्रेय के पास पहुँचे और उन्हें अपनी विपत्ति की गाथा सुनाई। महर्षि ने उन्हें धैर्य बँधाते हुए पुनः लड़ने को कहा। फिर लड़ाई हुई। किंतु देवता फिर हार गए और फिर जान बचाकर

भागे महर्षि दत्तात्रेय के पास। अब की बार असुरों ने भी उनका पीछा किया। वे भी दत्तात्रेय के आश्रम में आ पहुँचे। असुरों ने दत्तात्रेय के आश्रम में उनके पास बैठी हुई एक नवयौवना स्त्री को देखा। बस, दानव लड़ना तो भूल गए और उस स्त्री पर मुग्ध हो गए। स्त्री जो रूप बदले हुए लक्ष्मी जी ही थीं, असुर उन्हें पकड़ कर ले भागे। दत्तात्रेय जी ने देवताओं से कहा—"अब तुम तैयारी करके फिर से असुरों पर चढ़ाई करो।" लड़ाई छिड़ी और देवताओं ने असुरों पर विजय प्राप्त की। असुरों का पतन हुआ।

विजय प्राप्त करके देवता फिर दत्तात्रेय के पास आए और पूछने लगे—"भगवन्! दो बार पराजय और अंतिम बार विजय का रहस्य क्या है?" महर्षि ने बताया—"जब तक मनुष्य सदाचारी संयमी रहता है तब तक उसमें उसका पूर्ण बल विद्यमान बना रहता है और जब वह कुपथ पर कदम धरता है तो उसका आधा बल क्षीण हो जाता है। पर नारी का अपहरण करने की कुचेष्टा में असुरों का आधा बल नष्ट हो गया था, तभी तुम उन पर विजय प्राप्त कर सके।"

अभ्यास से सब कुछ संभव

राजा भोज अपने मंत्री के साथ कहीं दूर यात्रा कर रहे थे। रास्ते में उन्होंने एक किसान को ऊबड़-खाबड़ जमीन पर गहरी नींद में सोते देखा। राजा ने मंत्री से पूछा—"ऐसी ऊँची-नीची, ढेले और कंकड़ों से भरी हुई जमीन में इस किसान को गहरी नींद क्योंकर आ गई? हमें तो थोड़ी अड़चन होने पर निद्रा उचट जाती है।"

मंत्री ने कहा—"महाराज! यह सब अभ्यास और परिस्थितियों पर निर्भर है। मनुष्य से अधिक कोई कठोर नहीं और न उससे अधिक कोई कोमल होता है। परिस्थितियाँ मनुष्य को अपने अनुकूल बना लिया करती हैं।"

पर यह बात राजा को पूरी तरह नहीं जँची। मंत्री ने कहा—"तब इसकी परीक्षा कर ली जाए।" दोनों ने सलाह करके उस किसान

को राजमहलों में रखने का निर्णय किया जिससे उसे कुछ दिन तक राजसी ठाठ-बाट से रखकर उसकी जाँच की जाए। महलों में पहुँचने पर उसके खाने, पीने और सोने का बढ़िया से बढ़िया इंतजाम किया गया और उसे खूब आराम से रखा जाने लगा। इस प्रकार कई महीने बीत गए और किसान वैसे ही राजसी जीवन का अभ्यस्त हो गया।

प्रयोग का अंतिम दिन आ पहुँचा। मंत्री ने किसान के पलंग पर बिछे गद्दे के भीतर कुछ पत्ते और तिनके चुपके से रखवा दिए। राजा छिपकर देखने लगा कि देखें इस परिवर्तन का क्या परिणाम होता है।

किसान रातभर करवटें बदलता रहा। उसे नींद नहीं आई। सवेरे राजा उसके पास पहुँचे तो उसने शिकायत की कि गद्दे में कुछ गढ़ने वाली चीज मालूम पड़ती हैं, जिसने नींद हराम कर दी।

मंत्री ने कहा—"यह वही किसान है जो ढेले कंकड़ों पर धूप में पड़ा सो रहा था। आज इसे पलंग पर बिछे रूई के गद्दे में तिनके भी चुभते हैं। यह अभ्यास का ही अंतर है। कठोरता और कोमलता की जैसी परिस्थितियों का सामना करना पड़े कुछ ही दिनों में मनुष्य उन्हीं का अभ्यस्त हो जाता है।"

अँधेरा और उजाला

किसी समय चंद्रमा बहुत सुंदर था। हर दिन उसका चेहरा खिला ही रहता था और चाँदनी पूरी रात छिटकी रहती थी। कुछ दिन बाद चाँद पर मनहूसी सवार हुई। वह चुप रहने लगा, हँसने और मुसकराने की आदत छोड़कर वह मुँह लटकाए बैठा रहता।

जैसे-जैसे चुप्पी बढ़ी वैसे-वैसे चाँद की रोशनी भी घटने लगी। यहाँ तक कि पंद्रह दिन में वह बिलकुल कुरूप हो गया। न उसके चेहरे पर रोशनी रही न चाँदनी निकली। लोगों को भी अखरा। चाँद अपना दुखड़ा रोने विधाता के पास पहुँचा और कहा—"मेरी खूबसूरती कहाँ चली गई? मैं काला कुरूप क्यों हो गया?" विधाता ने कहा—"मूर्ख तू इतना भी नहीं जानता। हँसना ही खूबसूरती है, मुसकराहट का नाम ही

चाँदनी है। जा,मनहूसी छोड़ और हर दिन हर घड़ी खिलखिलाता रह, तेरी खूबसूरती फिर वापस आ जाएगी।" चंद्रमा ने विधाता की बात मानी, वह फिर हँसने की कोशिश करने लगा। जितनी सफलता मिलती गई उतनी ही उसकी खूबसूरती चमकती गई। पंद्रह दिन में फिर पुरानी हालत पर पहुँच गया। पूर्णमासी के दिन पूरे प्रकाश के साथ चमका। पर हाय री पुरानी आदत! वह छुड़ाए न छूटी। मनहूसी फिर उस पर सवार हुई, मुरदनी का सा चेहरा लटकाने और चुप रहने का ढर्रा उसने फिर अपनाया तो वही हालत फिर हुई। अमावस्या आते-आते वह फिर काला कुरूप हो गया।

यह देखकर वह घबराया और विधाता की नसीहत को ध्यान में रख फिर मुसकराने लगा और धीरे-धीरे अपनी खोई खूबसूरती उसने फिर बढ़ा ली। दूसरों की तरह चंद्रमा भी आखिर आदत का गुलाम बन गया। पंद्रह दिन इस पर मनहूसी सवार होती है तो मुँह लटकाए रहता है, परंतु उसकी रोशनी घटती जाती है। जब फिर होश सँभालता है तो हँसते मुसकराते अपनी खोई सुंदरता फिर प्राप्त कर लेता है। मुद्दतों से यह क्रम चलता आ रहा है। इसे ही अँधेरा और उजेला पाख कहा जाता है।

जैसा खाया अन्न वैसा बना मन

शरशैया पर पड़े हुए भीष्म पितामह उत्तरायण सूर्य आने पर प्राण त्यागने की तैयारी में लगे थे।

कुरु और पांडु कुल के नर-नारी उन्हें घेरे बैठे थे। पितामह ने उचित समझा कि उन्हें कुछ धर्मोपदेश दिया जाए। वे धर्म और सदाचार की विवेचना करने लगे।

सब ध्यानपूर्वक सुन रहे थे पर द्रोपदी के चेहरे पर व्यंग हास की हलकी सी रेखा दौड़ रही थी।

भीष्म ने उसे देखा और अभिप्राय को समझा।

वे बोले—"बेटी! मेरी कल की करनी और आज की कथनी में अंतर देखकर तुम आश्चर्य मत मानो। मनुष्य जैसा अन्न खाता है वैसा

ही उसका मन बनता है। जिन दिनों में राजसभा में तुम्हारा अपमान हुआ था उन दिनों कौरवों का कुधान्य खाने से मेरी बुद्धि मलीन हो रही थी इसलिए तुम्हारे पक्ष में न्याय की आवाज न उठा सका। पर इन दिनों मुझे लंबी अवधि का उपवास करना पड़ा है, सो भावनाएँ स्वतः वैसी हो गईं जैसा कि मैं इस समय धर्मोपदेश में व्यक्त कर रहा हूँ।"

द्रौपदी ने आहार की शुद्धि का महत्त्व समझा और क्षमा प्रार्थना के रूप में अपनी भूल पर दुःख प्रकट करते हुए पितामह के चरणों पर मस्तक झुका दिया।

शिक्षा देने से पहले

सातवर्षीय बालक को माँ पीटे जा रही थी। पड़ोस की एक महिला ने जाकर बचाया उसे। पूछने पर उसकी माँ ने बताया कि यह मंदिर में से चढ़ौती के आम तथा पैसे चुराकर लाया है, इसीलिए पीट रही हूँ इसे। उक्त महिला ने बड़े प्यार से उस बच्चे से पूछा—"क्यों बेटा! तुम तो बड़े प्यारे बालक हो। चोरी तो गंदे बच्चे करते हैं। तुमने ऐसा क्यों किया?"

बार-बार पूछने पर सिसकियों के बीच से बोला—"माँ भी तो रोज ऊपर वाले चाचाजी के दूध में से आधा निकाल लेती हैं और उतना ही पानी डाल देती हैं और हमसे कहती हैं कि उन्हें बताना मत। मैंने तो आज पहली बार ही चोरी की है।"

महिला के मुँह की आभा देखते ही बनती थी उस समय। वास्तव में बच्चों के निर्माण में घर का वातावरण बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

परोपकारी वकील

यहूदी धर्मगुरु रबी वूल्फ के यहाँ चोरी हुई तो उसमें चाँदी का एक मूल्यवान पात्र गया। रबी की पत्नी सोचती रहीं कि यदि घर का काफी सामान चोरी जाता तो संभवतः बाहर के चोर चोरी करने वाले

माने जाते। केवल एक पात्र के लिए बाहर से चोरों को आने का साहस भी न होगा। घर का काम–काज करने वाली यह नौकरानी आती रहती है। निर्धन तो वैसे भी है बेचारी! हो सकता है यही चुरा ले गई हो।

धर्मगुरु रबी ने तो इस चोरी के संबंध में कुछ न कहा पर उनकी पत्नी को नौकरानी पर संदेह बना ही रहा। नौकरानी से पूछताछ करने पर भी कुछ पता न चला तो उनकी पत्नी ने यह मामला यहूदी धर्म न्यायालय को सुपुर्द करने का निश्चय किया। पत्नी को धर्म न्यायालय की तैयारी करते देख रबी ने भी धर्माचार्य का चोगा पहनकर जाने की तैयारी की। पत्नी ने कहा—"प्राणप्रिय! धर्म न्यायालय चलने की आपको आवश्यकता नहीं। मुझे अच्छी तरह ज्ञात है कि धर्म न्यायालय में बोलते समय शिष्टाचार के किन नियमों का पालन करना पड़ता है।"

रबी ने शांतिपूर्वक पत्नी की बात सुनकर उत्तर दिया—"प्रिये! तुम्हें तो इस संबंध की सारी जानकारी है। पर बेचारी अशिक्षित नौकरानी जो कभी धर्म न्यायालय गई नहीं उसे तो यह सब बातें न आती होंगी। अतः उसके वकील के रूप में मैं न्यायालय जा रहा हूँ। उसे उचित न्याय मिल सके, यह देखना मेरा ही तो उत्तरदायित्व है।"

धोखा नहीं दूँगा

प्राचीन परंपराओं की तुलना में विवेकशीलता का अधिक महत्त्वपूर्ण प्रतिपादन करने वाले संत सुकरात को वहाँ के कानून से मृत्युदंड की सजा दी गई।

सुकरात के शिष्य अपने गुरु के प्राण बचाना चाहते थे। उन्होंने जेल से भाग निकलने के लिए एक सुनिश्चित योजना बनाई और उसके लिए सारा प्रबंध ठीक कर लिया।

प्रसन्नता भरा समाचार देने और योजना समझाने को उनका एक शिष्य जेल में पहुँचा और सारी व्यवस्था उन्हें कह सुनाई। शिष्य को आशा थी कि प्राण–रक्षा का प्रबंध देखकर उनके गुरु प्रसन्नता अनुभव करेंगे।

सुकरात ने ध्यानपूर्वक सारी बात सुनी और दुखी होकर कहा—"मेरे शरीर की अपेक्षा मेरा आदर्श श्रेष्ठ है। मैं मर जाऊँ और मेरा

आदर्श जीवित रहे तो वही उत्तम है। किंतु यदि आदर्शों को खोकर जीवित रह सका तो वह मृत्यु से भी अधिक कष्टकारक होगा। न तो मैं सहज विश्वासी जेल कर्मचारियों को धोखा देकर उनके लिए विपत्ति का कारण बनूँगा और न जिस देश की प्रजा हूँ, उसके कानूनों का उल्लंघन करूँगा। कर्त्तव्य मुझे प्राणों से अधिक प्रिय हैं।''

योजना रद्द करनी पड़ी। सुकरात ने हँसते हुए विष का प्याला पिया और मृत्यु का संतोषपूर्वक आलिंगन करते हुए कहा—''हर भले आदमी के लिए यही उचित है कि वह आपत्ति आने पर भी कर्त्तव्य-धर्म से विचलित न हो।''

अनीति का दंड

श्रुतायुध के पास शंकर जी के वरदान से प्राप्त एक अमोघ गदा थी। उसके तप से प्रसन्न होकर भगवान ने यह उपहार उसे इस शर्त पर दिया था कि वह उसका अनीतिपूर्वक प्रयोग न करे, यदि करेगा तो लौटकर वह उसी का विनाश कर देगी।

महाभारत युद्ध में श्रुतायुध को अर्जुन से लड़ना पड़ा। युद्ध प्रबल वेग से होने लगा और दोनों ही अपना रण कौशल दिखाने लगे।

सारथी का काम करते हुए कृष्ण को श्रुतायुध की कुरूपता पर हँसी आ गई। यह हँसी उसे तीर की तरह चुभी और आवेश में आकर उसने अमोघ गदा श्रीकृष्ण पर फेंक चलाई। उसे यह भी ध्यान न रहा कि उसके साथ क्या शर्त जुड़ी हुई है।

गदा कृष्ण तक न पहुँची और बीच से ही वापस लौटकर श्रुतायुध पर गिर पड़ी। उसका शरीर क्षत-विक्षत होकर भूमि पर गिर पड़ा।

धृतराष्ट्र को दिव्य दृष्टि से देखा हुआ यह समाचार सुनाते हुए संजय ने कहा—''राजन! मनुष्य को समस्त शक्तियाँ श्रुतायुध की गदा की तरह सद्प्रयोग के लिए मिली हैं। जो उन्हें अनीतिपूर्वक प्रयोग करते हैं वे अपने पाप से उलटे ही आहत होकर इसी तरह विनाश को प्राप्त होते हैं।''

स्वर्ग और नरक का अस्तित्व

जापान के संत हाकुइन के पास एक योद्धा स्वर्ग और नरक के अस्तित्व के संबंध में ज्ञान करने की जिज्ञासा से गया। संत ने नीचे से ऊपर तक बड़े ध्यान से उसे देखा, पास में बिठाया और पूछा—"तुम कौन सा व्यवसाय करते हो?"

"मैं शस्त्रजीवी हूँ।"

"तुम्हारी शक्ल तो भिखारियों जैसी लगती है। मुझे आश्चर्य है कि किस मूर्ख राजा ने तुम्हें अपनी सेना में भरती कर लिया।"

उस योद्धा को संत की बात सहन न हुई, क्रोध के कारण उसका चेहरा तमतमा उठा, उसका हाथ तलवार की मूठ पर गया। संत की दृष्टि उस तलवार पर गई तो उन्होंने अपनी बात शुरू करते हुए पुनः कहा—"अच्छा तो तुम्हारे पास तलवार भी है। अरे इससे तुम मेरा सिर काटना चाहते हो पर मेरी समझ में इससे पेंसिल भी काटना कठिन है।"

अब तो उस योद्धा का पारा चढ़ गया। उसे संत की बातें सहन न हो सकीं, संत और कुछ कहते तब तक तलवार म्यान से बाहर आ चुकी थी। उस योद्धा ने संत के मुँह से सुना—"वीरवर! नरक का द्वार खुल गया।" और उस योद्धा ने संत की बात सुनकर तलवार म्यान में रख ली और अपनी भूल को शीश नवाकर स्वीकार किया।

तब संत ने कहा—"अब यदि तुम स्वर्ग के दर्शन करना चाहते हो तो वह भी कर सकते हो। काम, क्रोध, लोभ, मोह, दंभ और हिंसा नरक के द्वार हैं और प्रेम, दया, शांति, संतोष, क्षमा और संयम आदि सतगुण ईश्वर प्राप्ति के साधन हैं।"

ध्यान का महत्त्व

दो मित्र थे। एक व्यक्ति दिनभर परिश्रम कर पेट भरता। दूसरा केवल दो घंटे परिश्रम करता था। पहला व्यक्ति तो और भी क्षीणकाय हो गया, दूसरा नगर प्रसिद्ध पहलवान बन गया। पहलवान को दिन पर दिन मान व धन मिलता जा रहा था। एक दिन उन दोनों की भेंट हुई, तो

पहलवान ने उससे पूछा—"तुम तो दिनभर मेहनत करते हो तो भी तुम्हारा शरीर और दुर्बल हो गया है और मैं केवल दो-तीन घंटे ही मेहनत करके और अधिक शक्तिवान हो गया हूँ।" फिर उसने पूछा—"तुम जब मेहनत करते हो तो तुम्हारा ध्यान कहाँ रहता है ?" उस दूसरे ने कहा—"पैसे कमाने में।" पहलवान ने कहा—"यही कारण है, मेरा ध्यान तो मेहनत करते समय शक्ति में लगा रहता है, मैं सोचता हूँ मेरी ताकत बढ़ रही है।"

वीणा का मर्म

मंदिर के पास प्रकोष्ठ में भगवान सुब्रह्मन्यम की मूर्ति थी, उसी के सामने वाले भाग में एक सुंदर वीणा रखी हुई थी। मंदिर में कई लोग कुछ तो वीणा के दर्शन कर लेते और चले जाते। कुछ उसे बजाने की इच्छा करते पर उसे बजाने की इच्छा करने पर वहाँ बैठा हुआ मंदिर का रक्षक उनसे मना करता और वे वहाँ से चल देते। इस प्रकार सुंदर स्वरों वाली वह वीणा जहाँ थी वहीं रखी रहती थी। उसका कभी कोई उपयोग न होता था।

एक दिन एक व्यक्ति आया। उसने वीणा बजाने की इच्छा व्यक्त की, पर उस व्यक्ति ने उसे भी मना कर दिया। वह व्यक्ति वहाँ चुपचाप खड़ा रहा। थोड़ी देर में सब लोग मंदिर से निकलकर बाहर चले गए तो उस व्यक्ति ने वीणा उठा ली और उसका लयपूर्वक वादन करने लगा। वीणा का मधुर स्वर लोगों के कानों तक पहुँचा तो लोग पीछे लौटने लगे और उस मधुर संगीत का रसास्वादन करने लगे। वाद्य घंटों चला और लोग मंत्रमुग्ध सुनते रहे। जब वह बंद हुआ तब भी लोग ईश्वरीय आनंद की अनुभूति करते रहे। लोगों ने कहा—"आज वीणा सार्थक हो गई।"

इतनी कथा सुनाने के बाद गुरु ने शिष्य से कहा—"तात! इस कथा का भावार्थ यह है कि भगवान मनुष्य शरीर सब को देता है पर कुछ लोगों को तो अज्ञान और कुछ लोगों को अहंकार उस महत्त्वपूर्ण यंत्र का उपयोग करने नहीं देता। पर यदि कोई इन दोनों की उपेक्षा

करके शरीररूपी वीणा से मधुर लहरियाँ निकालने लगता है, तो यह शरीर इतना परिपूर्ण है कि न केवल उसे ही वरन उसके संपर्क के सैकड़ों दूसरे लोग भी उसमें ईश्वरीय आनंद की झलक पाने लगते हैं।

आत्म-भाव का चमत्कार

एक आदमी संत तुकाराम का कीर्तन सुनने तो नित्य ही आता पर उनसे बहुत द्वेष रखता। वह मन ही मन किसी अवसर पर संत तुकाराम को नीचा दिखाने की ताक में रहा करता था।

एक दिन तुकाराम की भैंस उसके बाग के कुछ पौधे चर आई। बस वह आकर लगा गालियाँ सुनाने। इस पर भी जब संत उत्तेजित न हुए तो उसे और भी गुस्सा आया और एक काँटों वाली छड़ी लेकर तुकाराम को इतना पीटा, कि रक्त बहने लगा। फिर भी तुकाराम को न क्रोध आया, न प्रतिरोध ही किया।

संध्या समय जब वह व्यक्ति नित्य की भाँति कीर्तन में नहीं आया तो संत तुकाराम स्वयं उसके घर गए और स्नेहपूर्वक भैंस की गलती की क्षमा माँगते हुए उसे कीर्तन में ले आए।

अब वह व्यक्ति तुकाराम के चरणों में पड़ा और क्षमा-याचना कर रहा था।

सत्य की प्रतिष्ठा

अपनी गिरफ्तारी से कुछ दिन पूर्व ईसा येरूशलम में ही प्रचार कर रहे थे, जहाँ कि उनकी जान के ग्राहक सबसे ज्यादा थे, साथ ही जहाँ प्रचार की सबसे अधिक आवश्यकता थी। उनके शिष्यों ने उनसे येरूशलम छोड़ देने के लिए अनुरोध करते हुए कहा—"यहाँ के लोग आपको मार डालने की घात में हैं।" किंतु ईसा ने वहाँ से जाना अस्वीकार करते हुए कहा—"जीवन को उत्सर्ग किए बिना न तो सत्य की प्रतिष्ठा होगी और न उसका महत्त्व बढ़ेगा।"

साधु का चरित्र अत्यंत निर्मल रहे

शंख और लिखित दो साधु भाई-भाई थे। दोनों अलग-अलग जगह रहते थे। एक दिन लिखित अपने भाई शंख के आश्रम में गए। वे भूखे थे इसलिए उस वाटिका के फल तोड़कर खाने लगे। इतने में शंख आ गए। उनने भाई को कहा—"हम लोग साधु हैं, हमारा चरित्र साधारण लोगों की अपेक्षा अधिक ऊँचा होना चाहिए। मैं तुम्हारा भाई हूँ सो ठीक है पर बिना पूछे भाई की चीज लेना भी चोरी ही है। इसका प्रायश्चित करना आवश्यक है।" शंख को अपनी भूल का पता चला। वे इसका दंड लेने राजा के पास गए। उन दिनों चोरी की सजा हाथ काटना थी। लिखित ने खुशी-खुशी अपने हाथ कटवा लिए।

सत्पुरुषों का अनुसरण दूसरे लोग करते हैं, इसलिए उन्हें अपने चरित्र की ओर साधारण लोगों की अपेक्षा अधिक ध्यान रखना और अधिक उज्ज्वल बनना आवश्यक है।

धन का गर्व तुच्छ है

पुराने जमाने में लीडिया नामक देश का बादशाह 'कारूँ' अपने धन के लिए बड़ा विख्यात था। उसने इतना अधिक सोना, चाँदी, रत्न, जवाहरात आदि अपने खजाने में संग्रह किए थे कि संसार में अभी तक उसका नाम उदाहरण के रूप में लिया जाता है। एक बार यूनान का एक महान पुरुष सोलन उसके दरबार में गया। वहाँ पर कारूँ ने उसे अपना अपार धन दिखाकर पूछा—"क्या संसार में मुझ से बढ़कर और कोई सुखी हो सकता है?" पर सोलन तो तत्त्वज्ञानी था। उसने कहा— "मैं तो उसी व्यक्ति को सुखी समझता हूँ, जिसका अंत सुखमय हो।" यह सुनकर कारूँ अप्रसन्न हो गया और उसने सोलन को बिना विशेष आदर-सत्कार के विदा कर दिया। कुछ समय बाद ईरान देश के राजा साइरस ने कारूँ को हराकर कैद कर लिया और उसे मृत्युदंड दिया। जब वह जीवित जलाया जाने लगा तो उसे सोलन की बात याद आ गई

और उसके मुख से 'हाय सोलन', 'हाय सोलन' शब्द निकला। साइरस के पूछने पर उसने सोलन की बात बतला दी। साइरन पर भी इस उपदेश का प्रभाव पड़ा और उसने कारूँ को प्राणदान दे दिया।

संघर्ष से बड़ी शक्ति नहीं

द्रोणाचार्य कौरव सेना के सेनापति नियुक्त हुए। पहले दिन का युद्ध वीरतापूर्वक लड़े तो भी विजयश्री अर्जुन के हाथ रही।

यह देखकर दुर्योधन को बड़ी निराशा हुई। वह गुरु द्रोणाचार्य के पास गए और कहा—"गुरुदेव! अर्जुन तो आपका शिष्य मात्र है, आप तो उसे क्षणभर में परास्त कर सकते हैं, फिर यह देर क्यों?"

द्रोणाचार्य गंभीर हो गए और कहा—"आप ठीक कहते हैं, अर्जुन मेरा शिष्य है, उसकी सारी विद्या से मैं परिचित हूँ, किंतु उसका जीवन कठिनाई से संघर्ष करने में रहा है और मेरा सुविधापूर्वक दिन बिताने का रहा है। विपत्ति ने उसे मुझसे भी अधिक बलवान बना दिया है।"

किम् आश्चर्यम्

पांडव वन में थे। एक दिन उन्हें बहुत जोरों की प्यास लगी। सहदेव पानी की तलाश में भेजे गए। शीघ्र ही उन्होंने एक सरोवर खोज लिया पर अभी पानी पीने को ही थे, किसी यक्ष की आवाज आई—"मेरे प्रश्नों का उत्तर दिए बिना पानी पिया तो अच्छा न होगा?"

सहदेव प्यासे थे। आवाज की ओर ध्यान न देकर पानी पी लिया और वहीं मूर्च्छित होकर गिर पड़े। भीम और अर्जुन भी आए और मूर्च्छित होकर गिर गए। अंत में धर्मराज युधिष्ठिर पहुँचे। यक्ष ने उनसे भी वही बात कही।

युधिष्ठिर ने कहा—"देव! बिना विचारे काम करने वाले अपने भाइयों की स्थिति मैं देख रहा हूँ। आपके प्रश्न का उत्तर दिए बिना पानी ग्रहण न करूँगा।" प्रश्न पूछिए।

यक्ष ने पूछा—'किमाश्चर्यम्' अर्थात संसार में सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है?

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—"देव! एक-एक व्यक्ति करके सारा संसार मृत्यु के मुख में समाता जा रहा है, फिर भी जो जीवित हैं, वे सोचते हैं कि हम कभी न मरेंगे, इससे बढ़कर आश्चर्य और क्या हो सकता है।" यक्ष बहुत प्रसन्न हुए और पानी पीने की आज्ञा दे दी। चारों भाइयों को भी जिला दिया।

अधूरी भक्ति

मृत्यु के उपरांत एक साधु तथा एक डाकू साथ-साथ यमराज की सभा में पहुँचे। यमराज ने अपने बही-खातों की जाँच-पड़ताल करके उनसे कहा—"यदि तुम दोनों को अपने लिए कुछ कहना हो तो कह सकते हो।"

डाकू विनम्र स्वर में बोला—"महाराज! मैंने जीवन में बहुत पाप किए हैं। जो भी दंड विधान आपके यहाँ मेरे लिए हो वह करें। मैं प्रस्तुत हूँ।"

फिर साधु बोले—"आप तो जानते ही हैं, मैंने जीवनभर भक्ति की है। कृपया मेरे सुख साधनों का प्रबंध शीघ्र करवाएँ।"

यमराज ने दोनों की इच्छा सुनकर डाकू से कहा—"तुम्हें यह दंड दिया जाता है कि तुम आज से इस साधु की सेवा किया करो।" डाकू ने सिर झुकाकर आज्ञा शिरोधार्य की, परंतु साधु ने आपत्ति की—"महाराज! इस दुष्ट के स्पर्श से मैं भ्रष्ट हो जाऊँगा। मेरी भक्ति तथा तपस्या खंडित हो जाएगी।"

अब यमराज आदेश के स्वर में सक्रोश बोले—"निरपराध भोले व्यक्तियों का वध करने वाला तो इतना विनम्र हो गया कि तुम्हारी सेवा करने को तत्पर है और एक तुम हो कि वर्षों की तपस्या के पश्चात भी यह न जान सके कि सबमें एक ही आत्म-तत्त्व समाया हुआ है। जाओ तुम्हारी भक्ति अभी अधूरी है, अतः आज से तुम इसकी सेवा किया करो।"

पराया धन धूलि समान

भक्त राँका बाँका अपनी स्त्री समेत भगवत उपासना में लगे थे। वे दोनों जंगल से लकड़ी काट-काट अपना गुजारा करते थे और भक्ति

भावना में तल्लीन रहते थे। अपने परिश्रम पर ही गुजर करना उनका व्रत था। दान या पराये धन को वे भक्ति मार्ग में बाधक मानते थे। एक दिन राँका-बाँका जंगल से लौट रहे थे। रास्ते में मुहरों की थैली पड़ी मिली। वे पैर से उस पर मिट्टी डालने लगे। इतने में पीछे से उनकी स्त्री आ गई। उसने पूछा—"थैली को दाब क्यों रहे हैं?" उसने उत्तर दिया—"मैंने सोचा तुम पीछे आ रही हो कहीं पराई चीज के प्रति तुम्हें लोभ न आ जाए इसलिए उसे दाब रहा था।" स्त्री ने कहा—"मेरे मन में सोने और मिट्टी में कोई अंतर नहीं, आप व्यर्थ ही यह कष्ट कर रहे थे।" उस दिन सूखी लकड़ी न मिलने से उन्हें भूखा रहना पड़ा तो भी उनका मन पराई चीज पर विचलित न हुआ।

पराये धन को धूलि समान समझने वाले, अपने ही श्रम पर निर्भर करने वाले, साधारण दीखने वाले भक्त भी उन लोगों से अनेक गुने श्रेष्ठ हैं जो संत-महंत का आडंबर बनाकर पराये परिश्रम के धन से गुलछर्रे उड़ाते हैं।

श्रद्धा से विद्या मिलती है

हाथ में समिधाएँ लेकर दिलीप गुरु वशिष्ठ के पास गए, प्रणाम किया और विनीत भाव से पूछा—"गुरुदेव! विद्या प्राप्ति के लिए कौन सी वस्तु सबसे अधिक आवश्यक है?" वशिष्ठ ने कहा—"दिलीप! जो छात्र श्रद्धा और अनुशासन से रहकर अध्ययन करते हैं विद्या केवल उन्हें ही प्राप्त होती है।"

सत्य भावना पर निर्भर

एक बार एक अपराधी पकड़ा गया। उसे फांसी की सजा मिली। फांसी की कोठरी में जाने से पूर्व वह राजा को बुरी-बुरी गाली और दुर्वचन कहने लगा। वह था विदेशी, उनकी भाषा को सभा के एक दो सरदार ही जानते थे। राजा ने विदेशी भाषा जानने वाले एक सरदार से पूछा—"यह अपराधी क्या कह रहा है?" उसने उत्तर दिया—

"आपकी प्रशंसा करते हुए अपनी दीनता बताता हुआ यह दया की प्रार्थना कर रहा है।"

इतने में एक दूसरा सरदार उठ खड़ा हुआ उसने कहा—"नहीं, सरकार, यह झूठ बोलता है। अपराधी ने आपको गाली दी है और दुर्वचन बोले हैं।"

राजा तो विदेशी भाषा जानता न था और भी कोई तीसरा आदमी फैसला करने वाला न था। अब वास्तविकता कैसे मालूम हो? सत्य का पता कैसे चले? राजा ने स्वयं विचार किया और पहले सरदार को ही सत्यवादी कहा तथा अपराधी की सजा कम कर दी। दूसरे सरदार को उसने कहा—"चाहे तुम्हारी बात ठीक भले ही हो, पर उसका परिणाम दूसरों को कष्ट मिलना तथा हमारा क्रोध बढ़ाना है। इसलिए वह सत्य होते हुए भी असत्य जैसा है। इसे पहले सरदार ने चाहे असत्य ही कहा हो, पर उसके फलस्वरूप एक व्यक्ति की जीवन रक्षा होती है तथा हमारे हृदय में दया उपजती है इसलिए वह सत्य के ही समान है।"

मंकी सर्वप्रिय बना

महाराज अज के समय की बात है, एक दिन महर्षि वशिष्ठ किसी यज्ञ में पुरोहित बनकर जा रहे थे। मार्ग में मंकी नामक एक व्यक्ति मिला। उसने अपना दुःख प्रकट करते हुए कहा—"देव! मैंने सदैव सदाचरण किया है तो भी आज तक किसी ने न तो मेरी प्रशंसा की न ही प्यार।"

वशिष्ठ ने कुछ विचार किया फिर बोले—"आज से सदाचरण के साथ वाणी से सदा सुंदर बोलने का भी अभ्यास करो तो तुम्हें सर्वत्र सम्मान मिलेगा।" प्रिय बोलने के अभ्यास से मंकी कुछ ही दिनों में सर्वप्रिय बन गया।

अपकार का बदला उपकार

पंजाब केशरी महाराज रणजीतसिंह कहीं जा रहे थे। राज्य कर्मचारी भी साथ थे। एक बाग के पास से वे लोग गुजरे तो अचानक एक पत्थर आकर महाराज को लगा।

अपराधी को पकड़ने के लिए कर्मचारी चारों ओर दौड़े। आम तोड़ने के लिए बच्चे पेड़ों पर पत्थर फेंक रहे थे। उन्हीं में से एक महाराज के जा लगा था। बच्चों को पकड़ कर सामने उपस्थित किया गया।

रणजीतसिंह हँस पड़े। उनने बच्चों को मिठाई और उपहार देकर विदा किया और कहा—"बच्चो, ढेला मारने पर आम फल देता है, हमने भी चोट खाकर तुम्हें इनाम दिया है। बड़े होकर भूलना मत, अपकारी के साथ भी उपकार करना बड़ों की विशेषता होती है।"

आत्मकल्याण की साधना

साधु के दर्शनार्थ गाँव की भीड़ उमड़ पड़ी। लोग आते, साधु चरणों पर भेंट चढ़ाते और उनके वचनामृत का पान करने के लिए बैठ जाते।

साधु कह रहे थे—"सांसारिक प्रेम मिथ्या है, स्त्री, पुत्र सब लौकिक नेह और नाते छोड़कर मनुष्य को आत्मकल्याण की बात सोचनी चाहिए। भगवान का प्रेम ही सच्चा प्रेम है।"

एक छोटा सा बालक साधु की बातें बड़े ध्यान से सुन रहा था उसने छोटा सा प्रश्न किया—"महात्मन् मैं कौन हूँ?" 'आत्मा' साधु ने संक्षिप्त उत्तर दिया। महाराज मेरे पिता, मेरी माता दिनभर मेरे कल्याण की बात सोचते हैं क्या वह 'आत्मकल्याण' न हुआ। सर्वत्र फैली हुई विश्वात्मा से प्रेम क्या ईश्वर-प्रेम नहीं जो उसके लिए संसार का परित्याग किया जाए? साधु चुप थे उनसे कोई उत्तर देते न बन पड़ा।

तप की सामर्थ्य

देवता और असुरों का युद्ध बहुत दिन चलता रहा। असुर तगड़े पड़े। देवता अपनी सज्जनतावश उतनी धूर्तता बरत न पाते थे जितने निश्शंक होकर असुर छल करते थे। वृत्तासुर के नेतृत्व में असुरों की विजय दुंदभी बजने लगी।

निराश देवता ब्रह्माजी के पास पहुँचे और पूछा—"भगवन्! विजय के लिए हम किस अस्त्र का प्रयोग करें?"

ब्रह्माजी ने कहा—"धातुओं से बने अस्त्र उतने प्रभावशाली नहीं हो सकते जितने तप और त्याग से बने आयुध प्रभावशाली होते हैं। तपस्वी

की हड्डियों से ही वज्र बनाया जा सकता है। यदि तुम लोग तप त्याग विनिर्मित वज्र बना सको तो जीत तुम्हारी ही होगी। जाओ इसके लिए प्रयत्न करो।"

देवता तपस्वी को तलाश करने लगे और उसकी हड्डियाँ प्राप्त करने का उपाय सोचने लगे। अभीष्ट वस्तु की तलाश में उन्होंने गिरि, कानन और कंदराओं की तलाश करना आरंभ कर दिया।

महर्षि दधीचि अपनी दिव्य दृष्टि से इस कौतुक को देख रहे थे। उन्होंने देवताओं को पास बुलाया और प्रेमपूर्वक अपनी हड्डियाँ देने के लिए शरीर का परित्याग कर दिया।

तपस्वी दधीचि की अस्थियों से वज्र बना। वृत्तासुर मारा गया और उसकी सेना परास्त हुई। तब से देवताओं का सर्वश्रेष्ठ आयुध इंद्र का वज्र माना जाने लगा।

विजयोल्लास मनाने के लिए एकत्रित हुई देवसभा में गुरु बृहस्पति ने कहा—"देवताओ! विजय का स्थायित्व शक्ति पर निर्भर है और शक्ति आयुधों से नहीं तप-त्याग से भरी रहती है। यदि तुम सदैव अपराजित रहना चाहते हो तो तप और त्याग की शक्ति एकत्रित करो। इसमें प्रमाद करोगे तो फिर कभी कोई वृत्तासुर तुम्हें परास्त करने आ खड़ा होगा। दधीचि की माँगी हुई हड्डियों से कब तक काम चलेगा। तुम में हर एक को वज्र बनने के लिए दधीचि जैसा आत्मबल एकत्रित करना चाहिए।"

देवताओं ने वस्तुस्थिति को समझा और सुरगुरु के आदेशानुसार आत्मनिर्माण का प्रयत्न आरंभ कर दिया।

मर्यादा का पालन

शुक्राचार्य के पास जाकर कच संजीवनी विद्या का अध्ययन करने लगा। आचार्य ने छात्र को पुत्रवत पाला और सांगोपांग ज्ञान देने में कोई कमी न रखी।

आचार्य की कन्या देवयानी कच के साथ ही पढ़ती थी। बहुत दिन साथ-साथ रहते-रहते स्नेह सौजन्य भी दोनों में बहुत बढ़ गया था।

अध्ययन पूरा करके कच जब चलने लगा तो देवयानी ने उसकी जीवन सहचरी बनने की अभ्यर्थना की। कच इस प्रस्ताव को सुनकर अवाक रह गया। वह देवयानी से भरपूर प्रेम करता था, पर प्रेम का अर्थ दांपत्य संबंध में ही परिणत होना चाहिए, यह बात उसकी समझ में कभी भी न आई थी। गुरुकन्या सगी बहिन की तरह होती है। उसने सदा यही जाना और माना था। इस मान्यता को बदलने का कोई कारण भी उसे प्रतीत नहीं होता था।

कच ने प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। देवयानी की आकांक्षाओं पर तुषारापात हुआ तो वह तिलमिला गई, उसने शाप दिया कि मेरे पिता से जो कुछ तुमने पढ़ा है सो निष्फल जाएगा।

इतने दिन के श्रम के अध्ययन के निष्फल चले जाने पर भी कच विचलित न हुआ वरन उसके अधरों पर संतोष की एक लहर दौड़ गई। छात्र ने गुरु और गुरुकन्या का साष्टांग अभिवंदन करते हुए कहा—"आदर्शों और मर्यादा की रक्षा आवश्यक है। इसके लिए किसी व्यक्ति का अहित होता है तो उसमें चिंता की कोई बात नहीं। मेरा अध्ययन निष्फल जाना और देवयानी को इच्छित पति न मिलना निश्चय ही कष्टकारक है। इस दुखांत प्रकरण में हममें से कोई प्रसन्न नहीं। पर मनुष्य की प्रसन्नता तुच्छ है। आदर्शों की रक्षा के लिए आकांक्षाओं का बलिदान होता हो तो उसे सुखांत प्रक्रिया की तरह सहन किया जाना चाहिए।"

शुक्राचार्य की आँखें भर आईं। कच भी भारी हृदय लेकर वापस लौटा। देवयानी का तो हृदय ही टूटा जा रहा था। तीनों ही अपना पराभव अनुभव कर रहे थे। पर मर्यादा को जीतती देखकर तीनों की अंतरात्मा एक हलका सा संतोष अनुभव कर रही थी।

मरने से डरना क्या?

राजा परीक्षित को भागवत सुनाते हुए जब शुकदेव जी को छह दिन बीत गए और सर्प के काटने से मृत्यु होने का एक दिन रह गया

तब भी राजा का शोक और मृत्यु भय दूर न हुआ। कातर भाव से अपने मरने की घड़ी निकट आती देखकर वह क्षुब्ध हो रहा था।

शुकदेव जी ने परीक्षित को एक कथा सुनाई—राजन! बहुत समय पहले की बात है, एक राजा किसी जंगल में शिकार खेलने गया। संयोगवश वह रास्ता भूलकर बड़े घने जंगल में जा निकला, रात्रि हो गई वर्षा पड़ने लगी। सिंह व्याघ्र बोलने लगे। राजा बहुत डरा और किसी प्रकार रात्रि बिताने के लिए विश्राम का स्थान ढूँढ़ने लगा। कुछ दूरी पर उसे दीपक दिखाई दिया। वहाँ पहुँचकर उसने एक गंदे बीमार बहेलिए की झोंपड़ी देखी। वह चल-फिर नहीं सकता था इसलिए झोंपड़ी में ही एक ओर उसने मल मूत्र त्यागने का स्थान बना रखा था। अपने खाने के लिए जानवरों का मांस उसने झोंपड़ी की छत पर लटका रखा था। बड़ी गंदी, छोटी, अंधेरी और दुर्गंधयुक्त वह कोठरी थी। उसे देखकर राजा पहले तो ठिठका, पर पीछे उसने और कोई आश्रय न देखकर उस बहेलिए से अपनी कोठरी में रातभर ठहर जाने देने के लिए प्रार्थना की।

बहेलिए ने कहा—"आश्रय के लोभी राहगीर कभी-कभी यहाँ आ भटकते हैं और मैं उन्हें ठहरा लेता हूँ तो दूसरे दिन जाते समय बहुत झंझट करते हैं। इस झोंपड़ी की गंध उन्हें ऐसी भा जाती है कि फिर उसे छोड़ना ही नहीं चाहते, इसी में रहने की कोशिश करते हैं और अपना कब्जा जमाते हैं। ऐसे झंझट में मैं कई बार पड़ चुका हूँ। अब किसी को नहीं ठहरने देता। आपको भी इसमें नहीं ठहरने दूँगा।" राजा ने प्रतिज्ञा की, कसम खाई कि वह दूसरे दिन इस झोंपड़ी को अवश्य खाली कर देगा। उसका काम तो बहुत बड़ा है। यहाँ तो वह संयोगवश ही आया है सिर्फ एक रात काटनी है।

बहेलिए ने अन्यमनस्क होकर राजा को झोंपड़ी के कोने में ठहर जाने दिया, पर दूसरे दिन प्रातःकाल ही बिना झंझट किए झोंपड़ी खाली कर देने की शर्त को फिर दोहरा दिया। राजा एक कोने में पड़ रहा। रात

भर सोया। सोने में झोंपड़ी की दुर्गंध उसके मस्तिष्क में ऐसी बस गई कि सवेरे उठा तो उसे वही सब परमप्रिय लगने लगा। राजकाज की बात भूल गया और वहीं निवास करने की बात सोचने लगा।

प्रात:काल जब राजा और ठहरने के लिए आग्रह करने लगा तो बहेलिए ने लाल-पीली आँखें निकाली और झंझट शुरू हो गया। झंझट बढ़ा। उपद्रव और कलह का रूप धारण कर लिया। राजा मरने-मारने पर उतारू हो गया। उसे छोड़ने में भारी कष्ट और शोक अनुभव करने लगा।

शुकदेव जी ने पूछा—"परीक्षित बताओ, उस राजा के लिए क्या यह झंझट उचित था?" परीक्षित ने कहा—"भगवन्! वह कौन राजा था, उसका नाम तो बताइए। वह तो बड़ा मूर्ख मालूम पड़ता है कि ऐसी गंदी कोठरी में, अपनी प्रतिज्ञा तोड़कर राजकाज छोड़कर, नियत अवधि से भी अधिक रहना चाहता था। उसकी मूर्खता पर तो मुझे भी क्रोध आता है।"

शुकदेव जी ने कहा—"परीक्षित! वह मूर्ख तू ही है। इस मल-मूत्र की गठरी देह में जितने समय तेरी आत्मा को रहना आवश्यक था वह अवधि पूरी हो गई। अब उस लोक को जाना है जहाँ से आया था। इस पर भी तू झंझट फैला रहा है। मरना नहीं चाहता, मरने का शोक कर रहा है। क्या यह तेरी मूर्खता नहीं है?"

विद्रुध का सेवा धर्म

महापराक्रमी और पुण्यात्मा विद्रुध समयानुसार दिवंगत हुए और अपने सत्कर्मों के फलस्वरूप स्वर्गलोक में सुखोपभोग करने लगे।

सुख-साधन बहुत और परमार्थ का अवसर तनिक भी नहीं, ऐसे स्वर्ग में उनका दम घुटने लगा। आत्मा को सुख से नहीं, पुण्य से शांति मिलती है। जहाँ सुख तो रहे पर पुण्य का संतोष लाभ न मिले वहाँ रह कर मैं क्या करूँ? इस चिंता में वे निरंतर खिन्न रहने लगे।

देवराज इंद्र ने एक दिन उनकी खिन्नता का कारण पूछा तो उनने अपने मन की व्यथा कह सुनाई। उन्हें सुख नहीं शांति चाहिए। वे

विलास में नहीं परमार्थ में संतोष अनुभव करेंगे। देवराज की कृपा हो जाए तो मेरी सेवा का अवसर प्राप्त करने की कामना पूर्ण होती रहे।

सुरगुरु बृहस्पति जी ने विद्रुध को देवसभा में बहुत सराहा और कहा—"सुख-सुविधा से भरे हुए स्वर्ग की अपेक्षा तपस्वियों का तप लोक अधिक श्रेष्ठ है। विद्रुध देवताओं से अधिक श्रेष्ठ हैं, इसलिए उन्हें वहाँ भेजा जाए जहाँ पुण्य-परमार्थ और सेवा-साधना के अधिक अवसर रहते हैं। ऐसा तपलोक ही ऐसी श्रेष्ठ आत्माओं के लिए अधिक उपयुक्त है।"

एक अनजान देवता ने पूछा—"तपलोक से आपका प्रयोजन किस पुण्य क्षेत्र से है?" देवगुरु ने कहा—"मनुष्य लोक ही तपलोक है। उच्च कोटि के देवता वहाँ निवास करते हैं। सेवा और संयम से प्राप्त होने वाला संतोष, इस बेचारे स्वर्ग में कहाँ? वह अवसर केवल भूलोक के निवासी मानव-प्राणियों में ही उपलब्ध है।"

विद्रुध की महानता के आगे देवताओं के मस्तक झुक गए। उन्हें पुण्य परमार्थ का संतोष लाभ करने के लिए पुनः भूलोक में भेज दिया गया। लौटने पर उन्होंने पश्चात्ताप का नहीं, प्रसन्नता का ही अनुभव किया।

निन्यानवे का फेर

एक धनी व्यक्ति दिन-रात अपने व्यापारिक कामों में लगा रहता था। उसे अपने स्त्री-बच्चों से बात करने तक की फुरसत नहीं मिलती थी। पड़ोस में ही एक मजदूर रहता था जो एक रुपया रोज कमाकर लाता और उसी से चैन की वंशी बजाता। रात को वह तथा उसके स्त्री-बच्चे खूब प्रेमपूर्वक हँसते बोलते। सेठ की स्त्री यह देखकर मन ही मन बहुत दुखी होती कि हमसे तो यह मजदूर ही अच्छा है, जो अपना गृहस्थ जीवन आनंद के साथ तो बिताता है। उसने अपना महा दुःख एक दिन सेठजी से कहा कि इतनी धन-दौलत से क्या फायदा जिसमें फँसे रहकर जीवन के और सब आनंद छूट जाएँ।

सेठ जी ने कहा—"तुम कहती तो ठीक हो, पर लोभ का फंदा ऐसा ही है कि इसके फेर में जो फँस जाता है उसे दिन-रात पैसे की ही

हाय लगी रहती है। यह लोभ का फंदा जिसके गले में एक बार पड़ा वह मुश्किल से ही निकल पाता है। यह मजदूर भी यदि पैसे के फेर में पड़ जाए तो इसकी जिंदगी भी मेरी ही जैसी नीरस हो जावेगी।''

सेठानी ने कहा—''इसकी परीक्षा करनी चाहिए।'' सेठजी ने कहा, अच्छा—उसने एक पोटली में निन्यानवे रुपए बाँधकर मजदूर के घर में रात के समय फेंक दिए। सवेरे मजदूर उठा और पोटली आँगन में देखी तो खोला, देखा तो रुपए। बहुत प्रसन्न हुआ। स्त्री को बुलाया, रुपए गिने। निन्यानवे निकले, अब उनने विचार किया कि एक रुपया और मिलाकर इन्हें पूरे सौ कर लेना चाहिए। मजदूर जो एक रुपया कमाता था उसमें से आठ आने खाए गए, आठ आने जमा किए। दूसरे दिन फिर आठ आने बचाए गए। अब उन रुपयों को और अधिक बढ़ाने का चस्का लगा। वे कम खाते, रात को भी अधिक काम करते ताकि जल्दी-जल्दी अधिक पैसे बचें और वह रकम बढ़ती चली जाए।

सेठानी अपनी छत पर से उस नीची छत वाले मजदूर का सब हाल देखा करती। थोड़े दिनों में वह परिवार जो पहले कुछ भी न होने पर भी बहुत आनंद का जीवन बिताता था अब धन जोड़ने के चक्कर में, निन्यानवे के फेर में पड़कर अपनी सारी प्रसन्नता खो बैठा और दिन-रात हाय-हाय में बिताने लगा। तब सेठानी ने समझा कि जोड़ने और जमा करने की आकांक्षा ही ऐसी पिशाचिनी है जो मजदूर से लेकर सेठ तक की जिंदगी को व्यर्थ और भार रूप बना देती है।

भगवान के दर्शन

मैं तो इतने दिनों से भगवान की भक्ति कर रही हूँ—एक स्त्री ने संत को बताया—पर मुझे तो आज तक उन्होंने कभी स्वप्न में भी दर्शन नहीं दिया, आप कहते हैं कि वे आप से कभी अलग भी नहीं होते? बात यह थी कि वह स्त्री भक्ति तो करती थी पर अपने परिवार, पड़ोसी और संबंधियों सबके साथ उसका व्यवहार बहुत रूखा और अहंकारपूर्ण था। घर वाले भी उसके आचरण से दुखी थे।

संत बोले—"आज भगवान से पूछकर बताएँगे आप से क्यों नहीं मिलते।" दूसरे दिन स्त्री मिली तो वह बोले—"भाई भगवान तुम पर नाराज हैं कह रहे थे वह हमारे बच्चों से लड़ती, मारती, पीटती और द्वेष रखती है उससे मिलने का मन नहीं करता।"

स्त्री समझ गई। उस दिन से उसने अपना व्यवहार मीठा बना लिया फलस्वरूप दूसरे लोग उसे इतना प्यार और आदर देने लगे कि वह उस शांति में ही भगवान की उपस्थिति अनुभव करने लगी।

वेश्या बनाम पतिव्रता

एक पतिव्रता के सामने ही वेश्या रहती थी। पतिव्रता उसकी चेष्टाओं को लुक-छिपकर देखा करती और समय-समय पर उसकी भरपेट निंदा करती।

वेश्या देखती कि कुरूप, गुणहीन, अस्वस्थ और निर्धन पति की भी पतिव्रता एकाग्र भाव से कैसी सेवा करती है, तो उसका मन श्रद्धा से गद्‌गद हो जाता। उसे वह साक्षात देवी मानती और जब भी अवसर मिलता उसकी भरपूर प्रशंसा करती।

कुछ दिन बाद मृत्यु का समय आया। पतिव्रता की आत्मा स्वर्ग को गई। संयोगवश दूसरे ही दिन वेश्या भी मर गई और उसकी आत्मा भी वहीं जा पहुँची।

पतिव्रता को निम्न श्रेणी का स्वर्ग मिला और वेश्या को ऊँचे स्वर्ग में ले जाने की आज्ञा हुई। इस न्याय को अनुचित बताते हुए पतिव्रता ने धर्मराज से कहा—"भगवन्! वेश्यावृत्ति का पाप कर्म करते हुए भी इसे मुझसे श्रेष्ठ सद्‌गति क्यों?"

धर्मराज गंभीर हो गए। उनने कहा—"तुम्हारा पतिव्रत शरीर मर्यादा तक सीमित रहा। मन से उस वेश्या की रंगरेलियों में रस लेती रहीं और अपनी श्रेष्ठता का अहंकार और उसकी मजबूरी को न समझते हुए अपना चित्त घृणा और द्वेष से भरे रहीं। सो तुम्हारे शारीरिक

पतिव्रत का जितना पुण्य हो सकता था उतना ही छोटा सा स्वर्ग तुम्हें मिल रहा है।"

अपनी बात जारी रखते हुए धर्मराज ने कहा—"वेश्या ने परिस्थितियों की विवशता में वह व्यवसाय तो अपनाया पर अपने पाप के लिए सदा दुखी रही। तुम्हारे सत्कर्म को देखकर श्रद्धा से उसका मन भरा रहा और वैसी ही स्वयं बनने की प्रार्थना भगवान से करती रही। शरीर से मन बड़ा है। क्रिया से भावना श्रेष्ठ है। सो हे भद्रे! स्वर्ग की संहिता के अनुसार हम मन के भी पुण्य पापों की गणना करते हैं और उसी आधार पर फल का निर्धारण करते हैं।"

निष्क्रिय श्रद्धा

मार्ग में गंगा स्नान की भीड़ देखकर पार्वती जी बोली—"भगवन् देखिए लोग कितने धर्म-निष्ठ, कितने श्रद्धालु हैं।" शंकर जी हँसे और बोले—"पार्वती सच्ची श्रद्धा तो किसी बिरले में होती है यह सब तो श्रद्धालु कम, दुराचारी अधिक हैं।"

स्नानार्थियों की परीक्षा के लिए दोनों नीचे उत्तर आए। पार्वती जी एक ब्राह्मणी का वेष बनाकर खड़ी हो गईं और शिव जी एक अपंग पति का वेष बनाकर वहीं लेट गए। जो भी वहाँ से जाता पार्वती जी आग्रह करतीं—"मेरे अपाहिज पति को गंगा जी तक पहुँचा दें।" सहायता की बात तो दूर कोई तो बिदक कर निकल जाता और कितने ऐसे आते जो पार्वती पर बुरी दृष्टि डालते और उन्हें अपने पति को छोड़ देने तक को प्रभावित करते। शिव जी पार्वती जी की ओर मुसकराकर कहते देख लो यही है इनकी श्रद्धा। अंत में एक सज्जन किसान आया, उसने कहा माँ जी मैं इन्हें पहुँचा देता हूँ, आप आगे-आगे चलिए।

शिवजी प्रकट हुए और बोले—"श्रद्धा यह है। जो लोक-सेवा की प्रेरणा न दे वह श्रद्धा तो इन निकल गए अंध भक्तों की तरह दिखावटी ही होती है।"

हीरे बनाम पत्थर

एक राजा ने महात्मा को अपना हीरे-मोतियों से भरा खजाना दिखाया। महात्मा ने पूछा—"इन पत्थरों से आपको कितनी आय होती है?" राजा ने कहा—"आय नहीं होती बल्कि इनकी सुरक्षा पर व्यय होता है?" महात्मा राजा को एक किसान की झोंपड़ी में ले गया। वहाँ एक स्त्री चक्की से अनाज पीस रही थी। महात्मा ने उसकी ओर संकेत कर कहा—"तुम्हारे उन उपयोगहीन पत्थरों से यही अच्छे जो पूरे परिवार का भरण-पोषण करते हैं।"

राजा की भूल

एक संत के त्याग से प्रभावित होकर एक राजा ने भी उनसे गुरु दीक्षा ली। पहले भी हजारों लोग उनसे दीक्षा ले चुके थे। उनने राजा को दीक्षितों में देखा तो सबने जाकर कहा—"महाराज! अब तो आप हमारे गुरुभाई हैं अब हमसे राज्य कर नहीं माँगना।" राजा ने द्विविधावश सबका कर माफ कर दिया। परिणाम यह निकला कि राज्य व्यवस्था के लिए पैसा मिलना बंद हो गया। सारी व्यवस्था नष्ट-भ्रष्ट हो गई। यह देखकर संत ने राजा को बुलाया और कहा—"राजन धर्म की सार्थकता कर्म से है। आलसी लोग दीक्षा भी ले लें तो क्या, इनमें मेरा एक भी शिष्य नहीं।"

राजा ने भूल समझी और टैक्स लगा दिया, तब कहीं बिगड़ती शासन व्यवस्था सँभली।

विवेक सबसे बड़ा धर्म

मअद को यमन का शासक नियुक्त किया गया। राज्याभिषेक के उपलक्ष्य में जन-उत्सव संपन्न हुआ, बहुत सी प्रजा अभिषेक देखने आई। मअद बड़े नेक और ईश्वर भक्त राजकुमार थे।

ताज धारण कराने से पूर्व राजपुरोहित ने प्रश्न किया—"आपके सामने जो मामले मुकदमे आएँगे उन्हें किस प्रकार हल करेंगे।" मअद

ने उत्तर दिया—"कुरान शरीफ को आधार मानकर, जो कुरान के सिद्धांत के अनुसार होगा उसी का समर्थन करूँगा।"

पर यदि कुरान में वह बात न लिखी हो तो? "तब मैं धर्माचार्यों और जिन पर प्रजा का विश्वास है ऐसे पैगंबरों का निर्देश प्राप्त करूँगा।" मअद ने उत्तर दिया।

"यदि वह भी उपलब्ध न हो तो?" राजपुरोहित ने फिर प्रश्न किया।

"तब मैं अपने विवेक के अनुसार न्याय करने का यत्न करूँगा" मअद ने विनीत उत्तर दिया।

बहुत वाचालता भी अच्छी नहीं

महर्षि उद्दालक के आश्रम में कहोड़ नामक शिष्य रहता था। कहोड़ ने उद्दालक की बड़े प्रेम और भक्ति से सेवा की, उससे प्रसन्न होकर मुनिवर ने संपूर्ण वेद और उपनिषदों का ज्ञान उसे थोड़े ही समय में करा दिया। अपनी पुत्री सुजाता का विवाह भी कहोड़ के साथ कर दिया।

समय पाकर सुजाता गर्भवती हुई। कहोड़ अपनी पत्नी का सब प्रकार से ध्यान रखते थे। गर्भस्थ शिशु को ज्ञानवान और विचारशील बनाने के लिए वे प्रतिदिन सुजाता को वेद सुनाया करते थे। धीरे-धीरे गर्भ पकने लगा और सुजाता का स्वास्थ्य कमजोर होने लगा।

एक दिन कहोड़ वेद पाठ कर रहे थे। सुजाता को नींद की झपकी आ गई। उससे उनका ध्यान टूट गया और वे किसी मंत्र का अशुद्ध उच्चारण कर गए। गर्भस्थ शिशु ने बीच में ही टोक दिया— "पिताजी आप पाठ तो करते हैं किंतु शुद्ध उच्चारण नहीं करते।"

विद्वान और नैष्ठिक माता-पिता द्वारा सुसंस्कारित यह बालक अष्टावक्र नाम से विख्यात हुआ। शरीर से कुरूप होने पर भी वह अन्य सद्गुणों में बेजोड़ थे।

लक्ष्मी-निवास

इस बार देवताओं की प्रार्थना स्वीकार हो गई। लक्ष्मी जी असुरों का वास-स्थान सदैव के लिए परित्याग कर देवताओं के आश्रम में पहुँच गईं। देवराज इंद्र ने सविस्मय पूछा—"देवि! असुरों के पास से आपके चले आने का कारण जानने की प्रबल उत्कंठा है।" आगे बढ़कर स्वागत करते हुए इंद्र ने और भी कहा—"अंबे पहले आपने हमारी विनती नहीं सुनी, इसका भी कारण बताइए?"

इंद्र के आमंत्रण से महादेवी लक्ष्मी गद्गद हो गईं और अपना वरदहस्त उठा कर बोलीं—

"देवराज! जब किसी राष्ट्र में प्रजा सदाचार खो देती है, तो वहाँ की भूमि, जल, अग्नि कोई भी मुझे स्थिर नहीं रख सकते। मैं लोक-श्री हूँ, मुझे लोक सिंहासन चाहिए। मुझे आलस्य, अकर्मण्यता, फूट, कलह, कटुता पसंद नहीं। व्यक्ति के सदाचारी मानस में ही मैं अचल निवास करती हूँ। जहाँ लोग रीतिपूर्वक रहते हैं और परिश्रमपूर्वक अपना उद्योग करते रहते हैं उस स्थान को मैं कभी नहीं छोड़ती, पर जहाँ अकारण बैर-भाव, हिंसा, क्रोध, प्रमाद, अत्याचार अदि बढ़ जाते हैं उस स्थान को छोड़कर मैं तत्काल अन्यत्र चली जाती हूँ। मैं शुभ कार्यों से उत्पन्न होती हूँ, उद्योग से बढ़ती हूँ और संयम से स्थिर रहती हूँ। जहाँ इन गुणों का अभाव होता है उस स्थान को छोड़ जाती हूँ। बस इतने से ही मेरे असुरों का निवास छोड़ने और देवताओं की प्रार्थना स्वीकार कर लेने का रहस्य जान लेना।"

खाँड़ के खिलौने

एक गृहस्थ तीन खाँड़ के खिलौने लाया जो कि तीन साधुओं की मूर्तियाँ थीं। संयोगवश उसके यहाँ तीन अतिथि साधु भोजन करने आए। गृहस्थ ने उन्हें बड़ी श्रद्धा से बैठाया। इतने ही में गृहस्थ का एक छोटा लड़का आया वह उन खिलौनों को लेकर पूछने लगा—"यह

क्या है, पिताजी!'' गृहस्थ बोला—''यह साधू है।'' बालक ने पूछा, ''इनका क्या होगा ?'' गृहस्थ ने कहा—''इन्हें खाएँगे।'' लड़का बोला, कब। गृहस्थ बोला—''पहले इन साधुओं को भोजन कराकर हम खाना खा लें फिर एक-एक तीनों खा लेंगे।''

गृहस्थ तो इस प्रकार अपने बालक को उन खाँड़ के खिलौनों के बारे में बतला रहा था, उधर साधुओं ने समझा कि यह बातचीत उनके बारे में चल रही है। यह समझकर साधु उनके यहाँ से भागे, गृहस्थ को बड़ा अचरज हुआ, वह उनके पीछे भागा। वे लोग एक जगह रुके, थक गए तो गृहस्थ ने उनके भागने का कारण पूछा। साधुओं ने कहा कि तुम हमें मार डालना चाहते थे,हम तुम्हारी सब बात सुन रहे थे। गृहस्थ ने कहा—''महाराज मैं तो बालक से खाँड़ के खिलौनों के बारे में बातचीत कर रहा था।'' तब साधुओं की समझ में आया और वे फिर वापस उसके घर गए और भोजन किया। मन की दुर्बलता से लोग ऐसे ही डरे रहते हैं जब कि वास्तविकता कुछ और ही होती है।

नकल अच्छी नहीं

एक व्यापारी एक घोड़े पर नमक और एक गधे पर रूई की गाँठ लादे जा रहा था। रास्ते में एक नदी पड़ी। पानी में धँसते ही घोड़े ने पानी में डुबकी लगाई तो काफी नमक पानी में घुल गया। गधे ने घोड़े से पूछा—यह क्या कर रहे हो ? घोड़े ने उत्तर दिया—वजन हलका कर रहा हूँ। यह सुनकर गधे ने भी दो डुबकी लगाईं पर उससे गाँठ भीगकर इतनी भारी हो गई कि उसे ढोने में गधे की जान आफत में पड़ गई। सच है नकल के लिए भी बड़ी अकल चाहिए।

चित्र-विचित्र

एक आदमी बड़ा नास्तिक था, वह कहता था कि यह सारा संसार स्वाभाविक है, क्रियाएँ प्राकृतिक—अपने आप होती हैं। एक दिन एक लड़का एक बड़ा सुंदर चित्र बनाकर लाया। वह आदमी उसे

देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने पूछा—"यह शक्ल किसने खींची है।" तब लड़के ने कहा—"चाचा! मेरे ट्रेनिंग स्कूल में एक जगह एक कागज, रंगीन पेंसिलें और कलम दवात रखे थे। आप तो जानते ही हैं कि हर एक प्राकृतिक वस्तु में हरकत होनी स्वाभाविक है। झट अपने आप ही शक्ल खिंच गई।" यह सुन वह आदमी बोल पड़ा कि यह भी कभी हो सकता है? झट ही लड़का बोल पड़ा—"यदि वह शक्ल बिना खींचने वाले के नहीं खिच सकती तो यह संसार बिना किसी कर्त्ता के अपने आप नहीं बन सकता।"

भगवान अच्छा ही करता है

एक सिपाही छुट्टी लेकर अपने घर जा रहा था। मार्ग में वर्षा आने से उसके पास में कच्चे रंग की चुनरी, कागज के खिलौने, बताशे आदि जो वस्तुएँ थीं सब गलकर खराब हो गईं। सिपाही ईश्वर को गाली देने लगा कि उसने इसी समय वर्षा की। आगे चला तो कुछ डाकू आड़ में बैठे थे, उन्होंने इस पर निशाना चलाया पर कारतूस सील गए थे इसलिए गोली न चली और सिपाही ने भागकर प्राण बचाए। तब तो वह ईश्वर को धन्यवाद देता हुआ क्षमा माँगने लगा और अपने अज्ञान पर पश्चात्ताप करने लगा।

बोनीफेस झरना

संत बोनीफेस ने आजीवन औरों की सेवा की, पर कभी किसी से कुछ माँगा नहीं, भले ही उन्हें कई दिन का उपवास ही क्यों न करना पड़ा हो।

एक बार उन्हें कई दिन तक कुछ खाने को न मिला। एक स्त्री दूध निकाल रही थी। उन्हें ऐसा लगा कि अपने भीतर न माँगने का अंहकार उठ रहा है, सो उन्होंने तुरंत ही उस स्त्री से थोड़ा दूध माँगा। उसके पति ने बीच में ही टोककर दूध देने से इनकार कर दिया। संत बिना किसी दुर्भाव से आगे बढ़े, पर भूख सहन न करने के कारण

जमीन पर गिर पड़े। वहीं एक निर्झर फूट पड़ा जो आज भी बोनीफेस निर्झर के नाम से विख्यात है।

धन्य सुकन्या

राजा शर्याति अपने परिवार समेत एक बार वन विहार के लिए गए। एक सुरम्य सरोवर के निकट पड़ाव पड़ा। बच्चे इधर-उधर खेल, विनोद करते हुए घूमने लगे।

मिट्टी के ढेर के नीचे से दो तेजस्वी मणियाँ जैसी चमकती देखीं तो राजकन्या को कुतूहल हुआ। उसने लकड़ी के सहारे उन चमकती वस्तुओं को निकालने का प्रयत्न किया। किंतु तब उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उन चमकती वस्तुओं में से रक्त की धारा बह निकली।

सुकन्या को दुःख भी हुआ और आश्चर्य भी। वह कारण जानने के लिए अपने पिता के पास पहुँची। शर्याति ने सुना तो वे स्तब्ध रह गए। टीले के नीचे च्यवन ऋषि तपस्या कर रहे थे। संभवतः लड़की ने उन्हीं की आँखें फोड़ दी हैं। परिवार समेत राजा वहाँ पहुँचे। देखा वृद्ध च्यवन नेत्रहीन होकर कराह रहे हैं। समाधि उनकी टूट चुकी थी। पाप की मुक्ति तो प्रायश्चित से ही होती है। इस लक्ष्य को राज्य परिवार ने भली प्रकार समझ रखा था। कायरता क्षमा माँगती है और वीरता क्षतिपूर्ति करने को प्रस्तुत रहती है। सुकन्या ने अपने अपराध की गुरुता को समझा और उसके अनुसार प्रायश्चित करने का भी साहसपूर्ण निर्णय कर डाला। राजकन्या ने घोषित किया—"वह आजीवन अंधे और वृद्ध च्यवन की धर्मपत्नी बनकर रहेगी। उनकी सेवा को ही अपने पाप का प्रायश्चित मानेगी।"

घोषणा ने सुकन्या के गौरव को सहस्त्रों गुना बढ़ा दिया। आत्म-त्याग का इतना बड़ा साहस करने वाली आत्मा का त्याग सचमुच ही महान होना चाहिए। देवता उसे प्रणाम करने आए। शर्याति का दुखी मन

पुत्री के अनुपम त्याग से हर्ष विभोर हो गया। शरीर कष्टों की चिंता न करते हुए प्रायश्चित की अनुपम परंपरा स्थापित करते हुए च्यवन की क्षतिपूर्ति का जो साहस सुकन्या दिखा सकी उससे उनका मस्तक गर्वोन्नत हो गया। विवाह की परंपरा पूर्ण हो गई। सुकन्या अंधे और वृद्ध पति को देवता मानकर प्रसन्न मन से धैर्यपूर्वक उनकी सेवा करने लगी। देवता उस साधना से प्रभावित हुए और अश्विनीकुमारों ने च्यवन की वृद्धता और अंधता दूर कर दी। सुकन्या का जीवन सार्थक हो गया।

मेंढ़क का मेंढ़क

एक मेंढ़क बड़ी उग्र तपस्या करने लगा। क्षुद्र प्राणी की इतनी प्रबल निष्ठा देखकर शंकर जी दयार्द्र हो उठे, उनने उससे पूछा— "वत्स तुझे कुछ कष्ट तो नहीं?"

मेंढ़क ने कहा—"भगवन्! पड़ोस में एक दुष्ट सर्प रहता है जो मुझे भय देता रहता है। उससे ध्यान में विघ्न पड़ता है। कोई ऐसा उपाय कीजिए जिससे मेरा भय दूर हो और निश्चिंत मन से तपस्या कर सकूँ।"

शंकर जी ने मेंढ़क को साँप बना दिया। अब उसे कुछ भय न रहा, पर थोड़े दिन बाद एक न्यौला उधर आने लगा। मेंढ़क को फिर भय उत्पन्न हो गया।

मेंढक ने भगवान शिव का ध्यान किया तो वे प्रकट हो गए। कारण पूछने पर उसने नई व्यथा सुनाई। भगवान ने उसे न्यौला बना दिया। न्यौला बना मेंढ़क सुखपूर्वक तप करने लगा।

अब एक वनविलाव उधर आने लगा और न्यौले की घात सोचने लगा। मेंढ़क ने यह व्यथा कही तो भगवान ने उसे वनविलाव बना दिया। कुछ दिन बाद सिंह की आँखें वनविलाव पर लगीं तो शिव जी की कृपा से उसे सिंह का शरीर प्राप्त हो गया। इतने पर भी चैन न मिला, शिकारी अपना जाल और धनुष सँभाले सिंह की घात में फिरने लगे। मेंढ़क ने आर्त भाव से शिव जी को पुकारा, जब वे पधारे तो उसने

कहा—"प्रभो! मुझे मेंढ़क ही बना दीजिए।" सिंह का शरीर छोड़कर पुन: उसी छोटे शरीर में लौटने की इच्छा करने वाले मेंढ़क से आश्चर्य पूर्वक भगवान पशुपति ने पूछा—"भला ऐसा क्यों?"

मेंढ़क ने कहा—"प्रभो! भय कभी दूर नहीं होता और न बाधाएँ कभी समाप्त होती हैं। जीव जिस स्थिति में भी है उसी में कठिनाइयों से साहसपूर्वक लड़ते हुए आगे बढ़ सकता है। ऐसा मैंने समझा है। यह बात सत्य हो तो मुझे अपने असली शरीर में रहकर ही प्रसन्न रहने का अवसर दीजिए।" उसकी मान्यता ठीक थी। शंकर जी बहुत संतुष्ट हुए और सिंह को मेंढ़क रहकर ही तपस्या पूर्ण करने की आज्ञा दे दी।

धर्म का सौदा

तथागत एक बार काशी में एक किसान के घर भिक्षा माँगने चले गए। भिक्षा पात्र आगे बढ़ाया। किसान ने एक बार उन्हें ऊपर से नीचे तक देखा। शरीर पूर्णांग था। वह किसान कर्म पूजक था। गहरी आँखों से देखता हुआ बोला—"मैं तो किसान हूँ। अपना परिश्रम करके अपना पेट भरता हूँ। साथ में और भी कई व्यक्तियों का। तुम क्यों बिना परिश्रम किए भोजन प्राप्त करना चाहते हो?"

बुद्ध ने अत्यंत ही शांत स्वर में उत्तर दिया—"मैं भी तो किसान हूँ। मैं भी खेती करता हूँ।" किसान ने आश्चर्य से भरकर प्रश्न किया—"फिर........अब क्यों भिक्षा माँग रहे हैं?"

भगवान बुद्ध ने किसान की शंका का समाधान करते हुए कहा—"हाँ वत्स! पर वह खेती आत्मा की है। मैं ज्ञान के हल से श्रद्धा के बीज बोता हूँ। तपस्या के जल से सींचता हूँ। विनय मेरे हल की हरिस, विचारशीलता फाल और मन नरैली है। सतत अभ्यास का यान, मुझे उस गंतव्य की ओर ले जा रहा है जहाँ न दु:ख है न संताप, मेरी इस खेती से अमरता की फसल लहलहाती है। तब यदि तुम मुझे अपनी

खेती का कुछ भाग दो.......और मैं तुम्हें अपनी खेती का कुछ भाग दूँ तो क्या यह सौदा अच्छा न रहेगा।''

किसान की समझ में बात आ गई और वह तथागत के चरणों में अवनत हो गया।

कर्त्तव्य की कसौटी

स्वतंत्रता संग्राम में जूझते हुए राणा प्रताप वन पर्वतों में अपने छोटे परिवार सहित मारे-मारे फिर रहे थे। एक दिन ऐसा अवसर आया कि खाने के लिए कुछ भी नहीं। अनाज को पीसकर उनकी धर्मपत्नी ने जो रोटी बनाई थी उसे भी वनविलाव उठा ले गया। छोटी बच्ची भूख से व्याकुल होकर रोने लगी।

राणा प्रताप का साहस टूटने लगा। वे इस प्रकार बच्चों को भूख से तड़पकर मरते देखकर विचलित होने लगे। एक बार मन में आया शत्रु से संधि कर ली जाए और आराम की जिंदगी जिया जाए। उनकी मुख मुद्रा गंभीर विचारधारा में डूबी हुई दिखाई दे रही थी।

रानी को अपने पतिदेव की चिंता समझने में देर न लगी। उसने प्रोत्साहन भरे शब्दों में कहा—''नाथ कर्त्तव्य पालन मानव जीवन की सर्वोपरि संपदा है, इसे किसी भी मूल्य पर गँवाया नहीं जा सकता, सारे परिवार के भूखों या किसी भी प्रकार मरने के मूल्य पर भी नहीं। सच्चे मनुष्य न कष्टों से डरते हैं न आघातों से, उन्हें तो कर्त्तव्य का ही ध्यान रहता है। आप दूसरी बात क्यों सोचने लगे?''

प्रताप का उतरा हुआ चेहरा फिर चमकने लगा। उसने कहा—''प्रिये, तुम ठीक ही कहती हो। सुविधा का जीवन तुच्छ जीव भी बिता सकते हैं पर कर्त्तव्य की कसौटी पर तो मनुष्य ही कसे जाते हैं। परीक्षा की इस घड़ी में हमें खोटा नहीं खरा ही सिद्ध होना चाहिए।''

राणा वन में से दूसरा आहार ढूँढ़कर लाए और उनने दूने उत्साह से स्वतंत्रता संग्राम जारी रखने की गतिविधियाँ आरंभ कर दीं। ❑❑

मुद्रक—युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा (उ० प्र०)